यह समझकर कि आवश्यकता पड़ेगी अपने साथ पहले हीसे लकड़ीकी कुछ सीढ़ियां लेते गये थे; उन्हीं सीढ़ियोंमेंसे एकको अन्तल्ला दुर्गकी दीवारके नीचे लगाकर चूंडावतोंका सरदार ऊपर चढ़ने लगा; परन्तु शत्रुओंकी ओरकी एक गोली आकर लगी जिससे वह गिर पड़ा। ईश्वरने उसके भाग्यमें सेनाके सम्मुख भागकी रक्षाका सम्मान प्राप्त करना लिखा नहीं था। फिर दोनों दलोंका बढ़ना कुछ देरके लिये रुक गया। थोड़ी देर ठहरकर चूंडावत और शक्तावत वीर पुन: बड़े जोर शोरसे शत्रुओंको पराजित करनेका उद्योग करने लगे। शक्तावत सरदार एक बहुत बड़े और ऊंचे हाथी पर सवार था; दूसरा उपाय न देखकर उसने दुर्गके फाटककी ओर अपने हाथीको बड़े वेगसे दौड़ाया। खूब चिग्घाड़ कर हाथी फाटककी ओर दौड़ा; पर उसमें बहुतसे लोहेके बड़े बड़े कील लगे थे इसलिये वह टक्कर न मार सका। सो द्वार नहीं टूटा। अनेक शक्तावत वीर द्वार तोड़नेके उद्योगमें शत्रुओंके द्वारा मारे गये; पर उनके सरदारका उत्साह कम नहीं हुआ। इतनेमें चूंडावतोंकी ओरसे जयजयकारकी ध्वनि सुनाई दी। वह ध्वनि सुनकर शक्तावतसरदार कांप उठा! फिर तुरन्त वह हाथीके नीचे उतरा और फाटकमें लगे हुए कीलोंके आगे जाकर वहांसे महावतको पुकारके बोला—"हाथीको अभी मेरे विरुद्ध दौड़ा।. जल्दी जैसा मैं कहता हूं वैसा कर नहीं तो तेरा सिर काटा जायगा।" महावत मालिककी आज्ञा टाल न सका। अङ्कुश लगतेही भयङ्कर चीत्कार करता हुआ गजराज खूब जोरसे अन्तल्ला दुर्गके बन्द द्वार पर गिरा। कील सरदारके शरीरमें धँस गये अतएव हाथीको कम चोट आई; और फाटक टुकड़े टुकड़े हो गया। शक्तावतोंका सरदार पिसकर मर गया, किन्तु सैनिक उसकी चिन्ता न करके फाटकके टूटते ही अन्दरकी ओर दौड़े। पर इस वीर उपायसे फाटक तोड़ अर्थात् प्राण देकर भी शक्तावतसरदार अपनी सम्प्रदायको उस दिनका सम्मान दिला न सका! उसके सैनिकोंके अन्तल्ला दुर्गमें प्रवेश करनेसे पहले ही उसके प्रतिद्वन्द्वी चूंडावतसरदारकी लाश दुर्गके ऊपर गिर चुकी थी। मरनेसे पहले उसे चूंडावतोंका जो जयशब्द सुनाई दिया था वह उसी समयका था। शत्रुकी गोलीसे जब चूंडावतोंका सरदार मारा गया, तब उससे छोटे दूसरे सरदारने जिसका नाम "बन्दा ठाकुर" था उसका पद पाया। जो वीर कठोर

से कठोर विपत्तिका सामना करनेमें भी नहीं घबराते, आवश्यकता पड़ने पर शेरका भी खाली हाथ मुकाबला कर सकते हैं, जिनके मनमें किसी प्रकारकी माया ममता नहीं रहती, बन्दा ठाकुर वैसेही वीरोंमेंसे था। वह जैसा वीर था, वैसाही तेजस्वी और निडर भी था। जब चूंडावतसरदार मारा गया तब बन्दा ठाकुरने उसकी लाश एक कपड़ेमें बांधकर अपनी पीठ पर लाद ली और इसके बाद शत्रुओंको मारता काटता हुआ वह दुर्गके ऊपर सीढ़ियोंके सहारे पहुँच गया और वहां पहुंचते ही बड़े जोरसे चिल्लाया—"हिरोल! हिरोल! चूंडावतोंने हिरोल पाया!" तुरन्त सब चूंडावतोंने यह बात दुहराई। अन्तल्ला दुर्गके कोने कोनेसे टकराती हुई यह ध्वनि बहुत दूर तक पहुंच गई। बन्दाने बहुतसे शत्रु मारे। शीघ्रही मेवाड़की विजयपताका * अन्तल्ला किलेकी ऊँची चोटीपर उड़ती दिखाई दी। शक्तावतोंका दल सिर झुकाये हुए पीछे हट गया। "हिरोल" की सरदारीका अधिकार चूंडावतोंने पाया। इस परस्परके झगड़ेमें दोनों पक्षके बहुत से सैनिक और सरदार मारे गये। इस जगह हम शक्तावतोंकी उत्पत्तिका भी वृत्तान्त लिख देना उचित और आवश्यक समझते हैं।

राणा उदयसिंहके २४ पुत्र हुए थे; शक्तसिंह उनमें द्वितीय थे। ये बचपनसे निडर और तेजस्वी थे। छोटी उमरमें ही इनकी युवावस्थाकी निर्भीकता और

* शक्तावतोंके भाट अमरचन्दजी टाड साहबके बड़े मित्र थे। साहबने उनसे एक कहानी सुनी थी उसका मर्म नीचे लिखा जाता है,—

कहा जाता है कि जिस समय अन्तल्ला दुर्ग जीता गया उस समय दो मुसलमान सेनापति बड़े प्रेमसे शतरञ्ज खेल रहे थे। वे खेलमें ऐसे डूबे थे कि यद्यपि सैनिकोंने यह बात सूचित भी की कि राजपूतोंने चढ़ाई की है पर उन्होंने कुछ ध्यान नहीं दिया। राजपूतोंकी बारम्बार होनेवाली जयध्वनि सुनकर भी वे चैतन्य नहीं होते थे! वे एक दूसरेका फर्जी मारनेका उद्योग कर रहे थे। यहांतक कि राजपूत उनके सिरपर जा पहुंचे। तब वे बड़ी नम्रतासे बोले कि कृपा करके खेल की समाप्ति तक हमको छोड़ दीजिये। राजपूत ठहर गये। पर जब कई घण्टे बीत जाने पर भी उनका खेल समाप्त नहीं हुआ तब राजपूतोंने उनको उसी अवस्थामें मार डाला।

तेजस्विताकी जड़ बँधी थी । लिखा है कि इनकी जन्मपत्रिका बनानेके समय ज्योतिषीने विचारकर कहा था कि "शक्त मेवाड़के नामको कलङ्क लगावेगा।" ज्योतिषीकी बात सचमुच ठीक हुई । जबसे ज्योतिषीने ऊपर लिखी बात कही तबसे राणा उदयसिंह शक्तसिंहसे बहुत नाराज रहने लगे; पर पिताको पुत्रके साथ जो स्वाभाविक प्रेम होता है उसके कारण उन्होंने इनके साथ कोई कड़ा बर्ताव नहीं किया। परन्तु समयकी महिमा बड़ी विचित्र है;—कुछ समय बीतने पर यह दशा हुई कि ये उदयसिंहकी आंखोंमें कांटोंकी तरह खटकने लगे। एक दिन यहांतक नौबत पहुँची थी कि उदयसिंह सब स्नेह छोड़कर इनको मार डालनेके लिये तैयार हुए।

शक्तसिंहके निडर होनेका उनको बचपनकी अवस्थाका एक वृत्तान्त मिलता है। एक दिन छोटी उमरमें अपने पिताके पास बैठे वे कुछ खिलवाड़ कर रहे थे, इतनेमें कोई अस्त्र बनानेवाला एक नवीन खञ्जर बनाकर राणाजीके पास ले गया। उस खञ्जरकी तेज होनेकी परीक्षा एक सूती पतले कपड़ेपर की जाने लगी। ऐसे समयमें बनानेवालेसे उसे अपने हाथमें लेकर बालक शक्तने कहा—"पिताजी, यह खञ्जर तो हड्डी मांस काटनेके लिये बना है?" यह कहते ही कहते उसने जोर से उसे अपने हाथमें धँसाया। .खूनकी धारा बह निकली; गद्दी रंग गई; परन्तु शक्तसिंहके भोले मुखपर कुछ भी कष्टका चिह्न दिखाई नहीं दिया। यह देखकर सभामें जो लोग उपस्थित थे सबको बड़ा आश्चर्य हुआ। शक्तसिंहका इस प्रकारका निडर भाव देखकर वे आपसमें अनेक प्रकारकी बातें करने लगे; पर नहीं कहा जा सकता कि राणा उदयसिंहके मनमें क्या भाव पैदा हुआ। या तो अपने डर-पोकपनका ख्याल कर, या ज्योतिषीकी बात विचार कर, उन्होंने तुरन्त आज्ञा दी कि शक्तसिंहका सिर काटा जाये । उसी समय इस आज्ञाके पालनका प्रबन्ध हुआ। बालक शक्तको लोग बधस्थानमें ले गये। इतनेमें सालुम्ब्रासरदारने राणा-जीके पास जाकर बड़े विनीत शब्दोंमें कहा—"महाराज! कृपा करके इस दीन का एक निवेदन सुन लीजिये। महाराजने इस दासपर सन्तुष्ट होकर अनेक बार वरदानकी इच्छा प्रकाश की है; पर सुयोग न मिलनेके कारण दास आजतक कुछ प्रार्थना न कर सका। इस समय उपयुक्त समय आ गया है; अतएव कृपानाथ इस

दीनकी एक कामना पूरी करें।" राणा उदयसिंहने निष्कपट चित्तसे उत्तर दिया "सरदारजी, आपकी क्या इच्छा है कहिये; मैं अभी उसे पूर्ण करूँगा।" सालुम्ब्रा-सरदारकी आशा हो गई। उसने साहस करके विनयपूर्वक कहा—"महाराज! मैं धन नहीं चाहता, गौरव नहीं चाहता, ऊँची पदवी नहीं चाहता; मेरी केवल इतनी प्रार्थना है कि आप राजकुमारके प्राणदण्डकी आज्ञा निवारण करें। मेरे कोई पुत्र नहीं है, कन्या नहीं है; इतने धन और कुलके इतने बड़े मानका भोगनेवाला कोई नहीं है। राजकुमारको धर्मपुत्र बनाकर चूंडावत गोत्रको नष्ट होनेसे बचाऊँगा। यदि महाराज कृपा करके इस दीनकी प्रार्थना पूरी करें तो सब प्रकार मेरी रक्षा हो।" उदयसिंहने वचन दिया था अतएव शक्तसिंहके प्राणदण्डकी आज्ञा निवारण कर दी। सालुम्ब्रा-सरदारने उनको अपना धर्मपुत्र बनाया और आदरके साथ रखा। पर वृद्धावस्थामें उसके पुत्र हुए और कन्याएँ हुईं; तब वह बड़े विचारमें पड़ा; सोचने लगा कि दत्तक पुत्र शक्तसिंहको कौनसी जागीर दी जाय। परन्तु कुछ स्थिर न कर सका। उसी समय राणा प्रतापसिंहका एक दूत सालुम्ब्रा दुर्गको गया और बोला कि "राणा प्रतापसिंहने अपने भाई शक्तसिंहको स्मरण किया है।"

शक्तसिंह गये। दोनों भाई परस्पर मिले। इसके बाद अपने पालक-पितासे अनुमति लेकर शक्तसिंह बड़े आनन्दसे बड़े भाईके पास रहने लगे। पर दुर्भाग्यसे उनका बन्धुत्व बहुत दिनोंतक स्थिर न रहा। एक दिन शिकारके समय निशानेके विषयमें दोनों भाइयोंमें भयङ्कर झगड़ा हो गया। दोनों अनेक प्रकार तर्क वितर्क करने लगे; पर झगड़ा किसी तरह ते नहीं हुआ। तब प्रतापने उनपर कड़ी दृष्टि डाल और बर्छा दिखाकर कहा—"आओ देखें किसका निशाना व्यर्थ होता है।" दोनों बर्छे लेकर आगे बढ़े। वीरप्रथाके अनुसार शक्तसिंहने बड़े भाईके चरण छूए और प्रतापने भी आशीर्वाद दिया। इसके बाद दोनोंने एक दूसरे पर आक्रमण किया। सीसोदीय कुलका इस प्रकार नाश होनेके लक्षण देखकर दोनोंके सब साथी एक ओर ठिठककर खड़े हो गये; पर यह दशा देखतेही गिह्लोट-कुलका पुरोहित दौड़ा हुआ आया और बोला—"महाराज! यह क्या करते हैं! क्या करते हैं! अलग होइये।" यह कहता हुआ वह दोनोंके बीचमें पहुंच

गया और उनसे विनय करने लगा कि वे लड़ाई बन्द करें। पर उसका उद्योग सफल नहीं हुआ। तब कोई उपाय न लगता देखकर उसने अपने ही हृदयमें छुरी मार ली और वहीं दोनोंके बीचमें वह गिरकर मर गया। सामने ब्रह्महत्या हो गई! दोनों राजकुमार कलङ्कित हुए;—उनके सिर ब्रह्महत्याका पातक लगा। तब दोनों भाइयोंकी आंखें खुलीं और इतनी देरके बाद उन्होंने समझा कि उनकी नासमझीसे कैसी दुर्घटना हो गई। तब दोनोंने बर्छे चलाना बन्द किया। प्रतापने शक्तसिंहको मेवाड़राज्य छोड़कर चले जानेकी आज्ञा दी। शक्त प्रणाम करके चला गया; पर जाते समय बदला लेनेकी धमकी देता गया। वहांसे जाकर वह अकबरके पक्षमें मिल गया। इधर प्रतापसिंहने हितकारी पुरोहितके अन्तिम कृत्य तथा श्राद्धादि किये और उसके पुत्रके नाम सदाके लिये एक जागीर लिख दी। पुरोहितके वंशधर उस जागीरका अबतक भोग करते आते हैं। जिस जगह छुरी मारकर उसने प्राण त्यागे थे वहांपर उसका एक स्मारकस्तम्भ बनवाया गया; वह स्तम्भ अबतक वर्त्तमान है और उस श्रेष्ठ ब्राह्मणके आत्मोत्सर्गका परिचय दे रहा है। उसी दिनसे दोनों भाई एक दूसरेसे अलग हो गये; इसके बाद बहुत दिनों तक उनमें शत्रुता रही। फिर जिस दिन शक्तसिंहने भाईका जीवन बचाकर "खुरासानी मुलतानीका अग्गल" नामक पवित्र उपनाम पाया उस दिनसे पुनः दोनोंमें स्नेह और भ्रातृत्व हो गया। इस बारका स्नेहबन्धन जन्म भर नहीं टूटा।

शक्तसिंहके १७ पुत्र थे; उनमें एकता और स्नेह नहीं था। जिस दिन उनकी मृत्यु हुई उसी दिन उनके (उनके पुत्रोंके) भीतरी झगड़ेकी वह आग जो बहुत दिनों से सुलग रही थी सहसा भड़क उठी। पिताका अन्तिम सत्कार करनेके लिये सबसे बड़े पुत्र भाणजीको छोड़ सब नदी किनारे गये; वहांका कार्य नियमानुसार समाप्त करके वे भिनसरोर दुर्गको लौटे; पर दुर्गके अन्दर जाने नहीं पाये। उनके लौटनेसे पहले ही ज्येष्ठ भाणजीने फाटक भीतरसे बन्द करा लिये थे। जब ऐसा करनेका कारण पूछा गया तो यह उत्तर मिला—"तुम लोग कोई दूसरा स्थान ढूंढ़ो; अब यहां तुमको स्थान नहीं मिल सकता।" शक्तका दूसरा पुत्र अचल बड़े भाईके इस आचरण पर बहुत ही दुःखित हुआ, परन्तु कोई कड़ा उत्तर न देकर वह बड़ी नम्रतासे बोला—"यदि आपकी ऐसी ही आज्ञा है तो हमलोग

आपकी इच्छाके विरुद्ध कोई काम करना नहीं चाहते। केवल एकबार द्वार खोल दीजिये ताकि हम अपने स्त्री पुत्र और अस्त्रशस्त्रादि लेकर यहांसे चले जायँ।" फाटक खुल गया। अचल अपने १५ छोटे भाइयोंके साथ दुर्गमें गया और घोड़े तथा अस्त्रशस्त्र और परिवार लेकर वहांसे विदा हुआ। इसके बाद वे ईडरकी ओर चले। ईडर उस समय मारवाड़के राठौड़ोंके अधिकारमें था। अचलकी स्त्री गर्भवती थी अतएव उसे लेकर बड़ी सावधानीसे रास्ते चलने पड़े। पालोड़ नामक स्थानके पास पहुंचते पहुंचते उस गर्भवतीकी प्रसवपीड़ा बढ़ने लगी; अतएव आगे बढ़नेसे लाचार होकर वे वहांके शनिगुरु सरदारके पास गये और उससे टिकनेके लिये थोड़ी जगह देनेकी प्रार्थना करने लगे; पर बड़े दुःखकी बात है कि उस सङ्कटके समय निर्दय शनिगुरु-सरदारने उनको स्थान नहीं दिया। थोड़ी दूर पर जान्हवी देवीका एक टूटा फूटा मन्दिर * था; कोई दूसरा स्थान न पाकर वे अन्तमें वहीं गये। उस टूटे मन्दिरके एक कोनेमें जाकर वह आसन्न-प्रसवा स्त्री लेट गई। उसी समय बड़े जोरसे आंधी चली और मूसलधार पानी बरसने लगा। भयङ्कर वर्षा और आंधीके कारण मन्दिरका प्रत्येक भाग हिल गया और साथ ही पत्थरकी एक बड़ी पटिया छतके उसी स्थानसे खसककर जिसके नीचे गर्भवती सोई थी नीचेको झूलने लगी! परन्तु अचलके एक छोटे भाई बल्लने उसे अपने सिरपर रोक रखा। इधर दूसरे कई भाई पासके जङ्गलमें जाकर बबूलका एक पेड़ काट लाये और जबतक उन्होंने उसे ला और झूलती हुई पटियासे लगाकर (ताकि पटिया गिरे नहीं) जमीन पर खड़ा नहीं कर दिया तबतक बल्ल उसे अपने सिरके सहारे लिये हुए था।

विश्वमाता भगवती जान्हवीके उस टूटे मन्दिरमें उस भीषण पानी बूंदीके दिन शक्तावत वीर अचलकी पत्नीके गर्भसे एक कुमार जन्मा। उस तुरन्तके जन्मे हुए कुमारकी आकृति और लक्षण देख उसकी ओरसे अनेक आशाएँ करके सबने एकमत होकर उसका नाम "आशा" रखा। जब जच्चाके शरीरमें कुछ बल आ

* इस मन्दिरमें टाड साहबने अणहिलवाड़ा पाटणके प्रसिद्ध राजा कुमारपालकी राजत्वके विषयका एक शिलालेख पाया था। पालोड़ नीमहेड़ाके अन्तर्गत है अब यह मेवाड़से अलग है।

गया तब अपने स्वामी और देवरोंके साथ वह ईडर गई। वहांके शासनकर्त्ताने बड़े आदरसे इनको ग्रहण किया और इनके खर्चके लिये जागीर नियत कर दी।

ईडरके राठौड़ शासनकर्त्ताके बहुत सरल और सादर व्यवहारसे प्रसन्न होकर अचल अपने भाइयोंके सहित बड़े आनन्दसे उसके यहां रहने लगा। उसी समयमें एक दिन राणा अमरसिंहका प्रधान मन्त्री प्रसिद्ध जैनपीठ शत्रुञ्जय पर्वतसे † लौटता हुआ एक रातके लिये ईडर राज्यमें ठहर गया। दोपहर रात बीत गई थी; वह अपने परिवारके सहित पड़ाव डाले खेमोंमें विश्राम कर रहा था; इतनेमें बड़े जोरकी आंधी उठी और ऐसा जान पड़ने लगा कि सब खेमे उखड़ जायँगे। डरके मारे मन्त्रीका जी सूख गया; क्योंकि बचावका कोई उपाय नहीं था। उस भयावनी रातमें हितैषी ब्रह्म और योधने कई भाइयोंके साथ मिलकर मन्त्री तथा उसके परिवारको विपत्तिसे बचाया। उनके उपकारोंसे मन्त्री उनसे बहुत सन्तुष्ट हुआ। जब उसे इनका परिचय मालूम हुआ तब तो वह बड़ी विनय दिखाता हुआ बोला कि "आपका यहां रहना शोभा नहीं देता। उदयपुर चलिये। मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि महाराजसे कहकर आपको अच्छे पद दिलवा दूंगा।" पर उसका अनुरोध स्वीकार न कर वे बोले—"हमलोग महाराजके निमन्त्रणके बिना जाना उचित नहीं समझते; अतएव जबतक वे स्वयं न बुलवावें तबतक हम यहीं रहेंगे।" सो उनको बहुत दिनोंतक वहां रहना नहीं पड़ा। देहलीके बादशाहसे लड़नेके लिये राणा अमरसिंह उस समय पहाड़ी सेना इकट्ठी कर रहे थे; अपने जातिभाइयोंकी वीरता और हितकारिताका हाल मन्त्रीके मुखसे सुनकर उन्होंने इनके पास तुरन्त अपना एक दूत भेजा। उस दूतके साथही ये उदयपुर चले गये। राणा अमरसिंहने इनके पहुंचने पर इनका यथोचित आदर सत्कार किया।

उदयपुर पहुंचकर शक्तावतोंने जो काम किया वह यद्यपि बहुत सामान्य था पर उससे उनकी नेकी और अटल राजभक्तिका स्पष्ट परिचय मिलता है। लड़ाईके अवसर पर एक दिन रातके समय किसी पहाड़ी स्थानमें राणाजीको पड़ाव

† जैनियोंके पांच पवित्र पर्वतोंमें 'शत्रुञ्जय' एक है।

जागना पड़ा। एक तो जाड़ोंकी रात तिसपर खूब कुहिरा पड़ रहा था; ऐसे समयमें यह सोचकर कि कदाचित् राणाजीको कष्ट हो, बल्ल और योध बनमें जाकर बहुतसी लकड़ियां तोड़ लाये और आग बालकर सर्दीसे उन्होंने अपने राजाकी रक्षा की। भट्टग्रन्थोंमें इन शक्तावतों विशेषकर बल्ल और योधकी वीरता शूरता और सहृदयताके विषयमें बहुतसे वृत्तान्त मिलते हैं। जिस दिन साम्प्रदायिक झगड़ेमें पड़कर शक्तावत और चूंडावत वीरोंने अन्तला दुर्गपर चढ़ाई की थी उस दिन बल्ल ही शक्तावतोंके दलका सरदार था। यद्यपि बड़ा भाई भी उस समय उपस्थित था और गौरव पानेके लिये जीजानसे उसने भी उद्योग किया था, पर जिसके कारण शक्तावत कुलका यश सब दिशाओंमें फैला वह वीरवर बल्ल ही था। जब बल्ल अन्तला दुर्गके फाटकपर प्राण देने चला और वह बड़ा दुर्ग मुसलमानोंके अधिकारके बाहर हो गया तब बकरोलका सामन्त राजा यह शुभसमाचार लेकर राणाजीके पास गया। राणाजीने उसको उत्तम प्रकारसे पुरस्कृत किया और इसके बाद वे तुरन्त अन्तलाको चले। जिस समय वे वहां पहुंचे उस समय बल्लका अन्तिम समय निकट था; पर अपने राणाको सम्मुख देखकर बड़े उत्साहसे वह बोल उठा,—

"दूना दातार
"चौगुना जूझार,
"खुरासान मुलतानका अग्गल।" *

* "दूना दान; चौगुना आत्मोत्सर्ग"—अर्थात् राणाजी जितनेही अधिक व्यय करेंगे आत्मोत्सर्ग उतना ही अधिक बढ़ेगा।

इसी प्रकार चूंडावतोंका भी एक गौरवसूचक वाक्य है। वह यह है—"दस सहस्र मेवाड़का बड़ा किवाड़," अर्थात् "मेवाड़के दस सहस्र नगरोंका मुख्य द्वार।" कहा जाता है कि चूंडावतोंका यह गौरवसूचक वाक्य सुनकर शक्तसिंह डाहके मारे प्रधान भाटके पास गया और बड़े दुःखके साथ उससे बोला—"तो फिर हमारा क्या रहा?" भाटने उत्तर दिया "किवाड़का अग्गल" अर्थात् 'आपही उस किवाड़के अर्गल हैं।'

मरते हुए शक्तावत वीरका यह उत्साहवाक्य सुनकर राणाजी बड़े आनन्दित हुए और उसे हार्दिक आशीर्वाद देकर अपने नगरको लौटे। वीरवर बल्लूका यह अन्तिम वाक्य अबतक भट्टकवियोंके मुखसे सुन पड़ता है। यद्यपि शक्तावतोंकी वह वीरता और तेजस्विता अब बहुत घट गई है, यद्यपि आलस्य और अफीमने उनके वर्त्तमान वंशधरोंको हीन और बेकाम कर दिया है, तथापि उनका अबतक सम्मान होता है। अब भी यह नियम है कि जब कोई शक्तावत सरदार राणाजी के दरबारमें आता या अपने सामन्त भाइयोंके बीच बैठता है तो भाट लोग बल्लूका वही अन्तिम उत्साहवाक्य कहकर उसका कीर्त्तन करते हैं। इस वीरत्व और तेजसे भरे हुए वाक्य को सुनकर वर्त्तमान शक्तावतोंके कमजोर हृदयमें नवीन बल और उत्साह भर जाता है; वर्त्तमान समय भूलकर वे प्राचीन गौरवकी बातें याद करने लगते हैं; अन्तल्लाका वही मैदान—साम्प्रदायिक झगड़ेका वही स्थान—उनकी आंखोंके आगे दृश्यरूपमें आ पहुँचता है। उनको उस समय ऐसा जान पड़ने लगता है कि मानों अन्तल्लाका बड़ा किला सामने खड़ा है; वीर बल्लू गज राज पर चढ़ा उसका फाटक तोड़नेका उद्योग कर रहा है और उसके अन्य चार भाई अचलेश, योध, दिल्लू तथा चतुर्भान उसीके समान अपने प्राणोंके बचने या न बचनेका ध्यान छोड़कर लड़ रहे हैं। जब यह हृदयको जोशसे भर देनेवाला खयाली दृश्य उनके सामने आता है तब वे मूंछें उमेठने और तेज दृष्टिसे एक दूसरेकी ओर देखने लगते हैं।

इससे पहले किसी कारणसे राणाजी शक्तसिंहके ज्येष्ठ पुत्र भाणजीसे कुछ नाराज हो गये थे। राणाकी इस नाराजगीके कारण वह रातदिन बड़े दुःखमें पड़ा रहता। परन्तु उस दीन अवस्थामें उसे बहुत दिनोंतक रहना नहीं पड़ा। भीण्डौर के राठौड़ोंने राणाजीका अपमान किया, उस समय इसने अपना दल लेकर उन पर आक्रमण किया और उनको वहांसे भगाकर दुर्ग अपने अधीन कर लिया। भाणजीके द्वारा अपमान करनेवालोंको इस प्रकार दण्ड मिलनेसे राणाजी उससे बहुत सन्तुष्ट हुए और पुरस्कारकी रीतपर भीण्डौरको भी उन्होंने भिनसरोरके साथ युक्त कर दिया। शक्तसिंहसे लेकर उस समयतक (जब यह मूल पुस्तक लिखी गई) दस सरदारोंने शक्तावतोंकी गद्दी पाई थी। थोड़ेही दिनोंमें क-

सका वंश इतना बढ़ गया कि शक्तिसिंहके § दो ही चार पीढ़ियोंके बाद आवश्यकता पड़ने पर राणाजी लड़ाईमें ले जानेके लिये दस सहस्र शक्तावत एकत्रित कर सके; पर अराज झगड़ों और कठोर शासनके कारण इस गोत्रके बहुत लोगोंके प्राण गये। जो शक्तावतमण्डली किसी समय मेवाड़में बहुत बड़ी और श्रेष्ठ समझी जाती थी, इस समय वह निर्जीव और निस्तेज हो रही है। जो लोग लड़ाईके मैदानको खिलवाड़की जगह और अस्त्रशस्त्रोंको खिलौने समझते थे दुःखकी बात है कि उन्हींके वर्त्तमान वंशधर अस्त्रशस्त्र छूने तथा युद्धस्थलकी सीमाके भीतर पैर रखनेमें भी भयसे कांप उठते हैं!

आवश्यकता समझकर हम मुख्य बात छोड़कर दूसरे विषयके विचारमें लग गये थे; अब फिर सिलसिलेवार वृत्तान्त लिखते हैं। सीसोदीय वीर अमरसिंहके द्वारा निरन्तर तीन चार बार पराजित होकर जहांगीर बहुत डरा, पर निदान

§ शक्तसिंह— १७ पुत्र।
ज्येष्ठ भाणजी
दयाल | वीर | मान | गोकुलदास | पुरु
पुरु — सबल — मखम — अमर — पृथ्वी — जित — उम्मेद — खुशियाल — जोरावर

नहीं हुआ; बल्कि किस तरह बलवान् राजपूत वश में किये जा सकेंगे इस विषय में विचार करने लगा। बहुत शीघ्र एक बड़ी मुग़लसेना अजमेरके मार्गसे राणा पर चढ़ाई करने चली। जहांगीरने उस सेनाका प्रधान अपने पुत्र परवेजको बनाया। अजमेरमें सेनाएँ इकट्ठी होने पर प्रिय पुत्र परवेजको अपने पास बुलाकर जहांगीरने कहा—"बेटा, इस दफ़ा तुम्हारी कूवत और लियाक़त दुनिया पर ज़ाहिर होगी। मुझे देखना है कि इस मग़रूर राजपूत राजाका घमण्ड तुम तोड़ सकते हो या नहीं। लेकिन एक बात याद रखना। अगर राना अमरसी या उसका बड़ा फ़र्ज़न्द कर्ण फ़ौजकशी रोककर तुमसे मिलने आवे तो उसके साथ इज़्ज़तका बर्ताव करना। वामतंबा राजाओंके साथ जिस तरह पेश आना चाहिये उसी तरह तुम भी उससे पेश आना। मेरी हिदायतोंका ख़याल रखना। अगर वह सुलह करने पर राज़ी हो तो अपने सिपाहको रोक रखना ताकि जोशमें आकर वे उसके मुल्कमें किसी क़िस्मका हंगामा न बरपा करें *।"

बादशाह जहांगीरकी आशा पूरी नहीं हुई। अपने सैनिक-बलकी दृढ़ता और अधिकता देखकर उसने समझा था कि राणा अमरसिंह युद्ध रोककर उससे सन्धि कर लेंगे; पर ऐसी आशा करके उसने भूल की। सचमुच सन्धि करना तो दूर था राणाजीने ऐसा करनेका विचार भी कभी नहीं किया। जब उन्होंने सुना कि शत्रु बहुत बड़ा सैन्यदल लेकर आ रहे हैं तब वे भी उत्साहपूर्वक अपने सैनिकों और सरदारोंको एकत्रित करके लड़ने चले। अरावलीके एक प्रसिद्ध पहाड़ी दर्रेमें दोनों ओरकी सेनाओंका सामना हुआ। उस दर्रेका नाम खमनोर था। यहां अनेक राजपूतवीर शत्रुओंसे अपने देशकी रक्षा करनेमें लड़कर प्राण त्याग चुके थे; अतएव यह स्थान पवित्र था। इसी पवित्र स्थलमें दोनों दलोंमें घोर लड़ाई हुई। पर असंख्य मुग़लसेना थोड़ेसे गिनतीके राजपूतोंको दबा न सकी, वरन् उन थोड़ेसे राजपूतोंने बड़ी वीरतासे लड़कर शत्रुओंके व्यूहको तोड़ डाला। मुसलमान सैनिक छत्रभङ्ग होकर इधर उधर भाग खड़े हुए; बहुतोंने प्राय राजपूतोंके द्वारा मये; जो बचे वे अजमेरको भागे। वह दिन मेवाड़के लिये एक शुभ दिन था; यहांतक कि मुसलमान इतिहासलेखकोंने भी स्वीकार किया है कि

* यह सन् १६११ ई० की बात है।

वह दिन मेवाड़के महत्त्व और शीसोदियोंके सम्मानका था। जहांगीरकी आंखें खुलीं। उसके सैनिक नष्ट भ्रष्ट हो गये थे; उसके प्रिय पुत्र परवेजके प्राण बड़ी विपत्में पड़ गये थे। अबुलफज़ल लिखता है—"शाहजादः परवेज़ लड़ाईके मैदान से शिकस्त खाकर भागा और राहमें नागहां दर्रेमें गिर पड़ा और उसे सख्त चोट आई। उसकी फौजें तितरबितर हो गईं; नया सिलसिला बांधना मुश्किल था। बड़ी मुश्किलों और तकलीफोंसे वह किसी तरह जान बचाकर भाग सका।" इस प्रकार मुगलसेनाका अधिक भाग राजपूतोंके हाथों मारा गया; परन्तु जहांगीरने अपने रोजनामचेमें असल बातको उड़ाकर लिखा है कि—"मैंने परवेजको लिखा कि तुम लड़ाई रोककर लाहोरमें मुझसे आ मिलो और हुक्म दिया कि कुछ फौजके साथ उसका बेटा रानाके मुकाबलेके लिये जाये।" जहांगीरने सत्य बात न लिखकर अपनेको अपमानित होनेसे बचानेके लिये रोजनामचेमें ऐसी बात लिखी; पर संसार जानता है कि सचाईका प्रकाश कभी छिप नहीं सकता।

पराजित परवेज पिताके यहां गया और सेनापति बनाकर अपने पुत्रको उसने राणाजीके विरुद्ध भेजा। बार बार हारनेसे शाहजहांके क्रोधकी आग बहुत भड़क उठी थी; उसने निश्चय किया कि राजपूतोंके खूनसे इस आगको बुझावेंगे; इसीलिये उसने महाबतखां नामक सेनापतिको पौत्रके साथ भेजा। राणाजीके विरुद्ध सेनाएँ भेजकर उसने मनमें बड़ी बड़ी आशाएँ कीं; पर उसकी एक भी आशा पूरी नहीं हुई। उसके सैनिक पराजित हुए; परवेजका पुत्र दलबलके सहित मारा गया। पर इस बार भी पराजित होकर जहांगीर शान्त नहीं हुआ; एक दलके कट जाने पर उसने राणाजी पर आक्रमण करनेके लिये दो तीन दल एकत्र करके भेजे। राणाजीने इस दूसरे आक्रमणको भी व्यर्थ कर दिया; पर फल कुछ नहीं हुआ। जिन युद्धकुशल राजपूत वीरोंकी सहायतासे राणा अमरसिंहजी अबतक अपने असंख्य शत्रुओंका नाश कर चुके थे, वे एक एक करके लड़कर वीरगतिको जाने लगे। राणाजीका सैनिक बल धीरे धीरे बहुत घट गया अब वे वीर नहीं थे; वे योद्धा नहीं थे; सेनाएँ प्रायः समाप्त हो चली थीं; जो थोड़ेसे सैनिक बचे थे उनमें मृत वीरोंके समान गुण नहीं थे; तथापि उनको धीरे धीरे शिक्षित करके राणाजी जहांगीरकी विशाल सेनाके मुकाबलेमें चले। वां

उत्साहमें भरे हुए वे सैनिक राणाजीके साथ चले। उनकी वीरताकी तेज आंचसे मुगलोंका सेनासागर सूख गया; पर उनमेंसे दोही चार बिलकुल अक्षत शरीरसे बचकर अपने नगरको लौट सके। इस प्रकार वीरवर प्रतापसिंहके स्वर्गगमनके बाद राणा अमरसिंह मुसलमानोंसे १७ बार लड़े और सबही बार उनकी जीत हुई; परन्तु इस बारका समय चित्तौड़के लिये बड़े सङ्कटका था। इस बार क्रोधमें डूबे हुए जहांगीरने अपने सबसे चतुर पुत्र खुर्रमको राणाजीके विरुद्ध भेजा। यही खुर्रम पीछे शाहजहांके नामसे प्रसिद्ध हुआ। बहुत थोड़ी उमरसे इसने समरविद्या सीखकर उसमें अच्छी योग्यता पाई थी। जिस दिन जहांगीरने इसे सेनापति बनाकर भेजा उस दिनसे सीसोदीय कुलकी हानि प्रारम्भ हुई। भला उस समय चित्तौड़की कौन रक्षा करता? कौन मुगलसेनाके सरदार सुलतान खुर्रमका सामना करता? अमरसिंहने एक बार मेवाड़की उस समयकी अवस्था पर विचार किया। विचार करनेसे उनको मालूम हुआ कि अवस्था बहुत बुरी है। खजानेमें धन नहीं था; दुर्गमें सेना नहीं थी; अस्त्रालयमें अस्त्र नहीं थे; इतना समय भी नहीं था कि इन अभावोंकी पूर्त्ति की जा सकती;—अतएव उनको जान पड़ा कि ऐसी दशामें मेवाड़का अधःपतन अवश्य होगा। पर देशका अधःपतन होना निश्चित जानकर क्या वे उसपर चुपचाप शत्रुओंका अधिकार होना देख सकते थे? क्या मुसलमान मेवाड़वासियोंको भेड़ बकरियोंकी तरह अपने वशमें करते? नहीं, कदापि नहीं। मेवाड़की वीरमण्डली ऊपर लिखी १७ लड़ाइयोंमें वीरगतिको जा चुकी थी पर अब भी जो असंख्य लोग वहां वर्त्तमान थे वे निर्जीव नहीं थे केवल मांसके पिण्ड नहीं थे। जिनके बालक और जिनकी स्त्रियांतक अद्भुत वीरताका उदाहरण संसारमें छोड़ गईं उनको उत्पन्न करनेवाली मेवाड़भूमि आज अपनेको शत्रुओंकी बेड़ियोंमें कदापि जकड़ने नहीं दे सकती थी। मेवाड़के युद्धकुशल वीर पुरुष लड़ाईमें वीरगतिको गये थे, पर अब भी वहां जो असंख्य स्त्री पुरुष वर्त्तमान थे वे अपना कर्त्तव्य भूले नहीं थे; अबतक उनके हृदयोंमें सच्चे स्वदेशानुरागी वीरवर प्रतापसिंहकी स्मृति वर्त्तमान थी। शत्रु भयानक वेष बनाये सिरहाने खड़े हैं, अभी मेवाड़भूमिकी दुर्दशा कर डालेंगे; जीवनस्वरूपिणी सुन्दरियोंका सतीत्व बिगाड़ेंगे;—सबके मनमें यह चिन्ता उत्पन्न हुई। सबने प्रतिज्ञा की कि प्राण रहते

मेवाड़ पर आपदा न आने देंगे; समरभूमिमें प्राण देंगे, कठोरसे कठोर कष्ट उठा वेंगे, पर मातृभूमिकी दुर्दशा इन आंखों न देखेंगे। यह प्रतिज्ञा करके दलके दल लोग जाकर अमरसिंहकी सेनामें सम्मिलित होने लगे; जिससे जितना हो सका उसने उतना धन इकट्ठा करके राणाजीके पास भेजा; स्त्रियोंने अपने आभूषण बेचे; कृषकोंने अपने हल गिरों रखे; व्यापारियोंने अपने ढेरके ढेर द्रव्यमेंसे अधिकांश बिना कुछ सोच विचार किये दिया। देखते देखते खजाना धनसे भर गया। उस द्रव्यकी सहायतासे राणाजीने बहुत थोड़े समयमें आवश्यक अस्त्रशस्त्रादि तैयार कराये और अपने पुत्रों तथा आपसे आप आकर सैन्यदलमें सम्मिलित होनेवाले लोगोंको लेकर वे मुगलसेनाका सामना करने चले। आखिर दोनों दलोंमें लड़ाई आरम्भ हुई। लड़ाईका कुछ भी ढङ्ग न जाननेवाले राजपूत सैनिक अपनी अपनी शक्तिके अनुसार बड़े उद्योगसे लड़ने लगे। जिन्होंने उस समयसे पहले कभी हाथमें तलवार भी नहीं पकड़ी थी, कभी लड़ाईके मैदानमें पांव भी नहीं रखे थे, आज वे वृद्ध युद्धनिपुण सरदारोंकी तरह सदाके लड़ने भिड़नेवाले मुगलोंसे लड़ने लगे। पर फल कुछ नहीं हुआ। समुद्रकी तरह फैली हुई बहुत बड़ी मुगलसेनाके आगे मुट्ठी भर राजपूत कबतक ठहर सकते थे? अतएव जो परिणाम हुआ उसे लिखते लेखनी रुकती है; हृदय शोकसे भर जाता है। वीर-पूज्य बप्पारावलका जो ऊँचा झण्डा आठसौ वर्षसे अधिक समयतक विजयी गिह्लोट राजाओंके गर्वोन्नत मस्तकके ऊपर उड़ा किया—आज जहांगीरके पुत्रके आगे वह नीचा हो गया! इसका वृत्तान्त—सीसोदीय कुलके इस दुःखित करनेवाले अधःपतनका वृत्तान्त—जहांगीर बादशाहकी खास जीवनीसे जिसे वह स्वयं फ़ारसीमें लिख गया है हिन्दीमें अनुवादित करके नीचे प्रकाशित किया जाता है,—

"अपने राजत्वके आठवें वर्ष १०२२ हिजरीमें * मैंने निश्चय किया कि अजमेर जाते ही अपने सौभाग्यवान् पुत्र खुर्रमको अपने आगे रवाना करूँगा। इसके बाद यात्राका समय निश्चित होने पर उसे मूल्यवान् खिलअत, एक हाथी, एक घोड़ा, एक तलवार, एक ढाल और एक खञ्जर उपहारमें देकर बिदा किया। जो सेना उसके अधीन थी उसके सिवा और १२ हजार सवार अजीमखांकी अफसरीमें भेज दिये और सब कर्मचारियोंको सन्तोषजनक उपहार दिये।

* सन् १६१३ ई०।

"नवें सालके प्रारम्भमें एक दिन शुभ समयमें मैं दरबारमें बैठा था इतनेमें राणा का प्यारा हाथी आलमगुमान और १७ हाथियोंके सहित जिनको खुर्रमने पकड़ा था मेरे सामने लाया गया। दूसरे दिन आलमगुमान पर सवार होकर बड़े हर्षके साथ मैं नगरभ्रमण करने निकला और सबको काफी सोना दान किया।

"थोड़े ही दिन बाद यह शुभ समाचार आया कि राणा अमरसिंहका मेरे पास आकर मेरी अधीनता स्वीकार करनेका विचार है और यह कि मेरे भाग्यवान् पुत्र खुर्रमने राणाके राज्यके अनेक दुर्गों पर अधिकार किया है और वहां अपनी सेनाएँ रखी हैं। वहांका जलवायु अस्वस्थकर और वह देश उजाड़ तथा बहुत दुर्गम होनेके कारण आजसे पहले वह सारा प्रान्त अपने अधीन करना असंभव समझा गया था; परन्तु मेरे सैनिकोंने गर्मी बरसातकी कुछ भी परवा न कर समग्र प्रान्तको रौंद डाला और वहांके अनेक प्रतिष्ठित लोगोंके बालबच्चों और परिवारवालोंको कैद कर लिया इससे राणाकी आशाएँ टूट गईं और यह सोचकर कि यदि ऐसा ही अत्याचार और कुछ दिन होता रहा तो देश छोड़कर कैदमें रहना पड़ेगा उन्होंने अन्तमें वशमें होनेका निश्चय किया। अतएव अपने शुभकर्ण और हरिदास झाला नामक दो सरदारोंसे उन्होंने खुर्रमके पास कहला भेजा कि "यदि मुझे क्षमा करके वे स्वयं आकर अपने हाथोंसे मुझे ग्रहण करें तो वे जिस योग्य हैं वैसा मैं उनका सम्मान करूँगा और जिस तरह दूसरे हिन्दू राजाओंने उनको माना है उसी तरह मैं भी मानूंगा। वृद्धावस्थाके कारण उनके पास मैं स्वयं न रह सकूंगा, किन्तु अपने पुत्रको भेज दूंगा। इसके लिये वे मुझे क्षमा करें।" यह सब हाल मेरे पुत्रने शुक्रुल्लह अब्दुल गनीके द्वारा कहला भेजा है।

"अपने शासनसमयमें ऐसी घटना संघटित होनेसे मैं बहुतही आनन्दित हुआ और आज्ञा की कि उक्त प्रान्तके अधिकारी अपने प्राचीन अधिकारोंसे वञ्चित न हों। मैं खूब जानता था कि राणा अमरसिंह और उनके पूर्वजोंको उनके देशके दुर्गम और किलोंके बहुत मजबूत होनेका अभिमान था और यह कि भारतवर्षके किसी राजाको वे कुछ समझते नहीं थे; या कि कभी उन्होंने किसीके आगे सिर नहीं झुकाया। मेरे विशेष सौभाग्यसे यह शुभ अवसर आया; अतएव मैंने इस अवसरकी ओरसे लापरवाई नहीं की, किन्तु उसी समय अपने पुत्रको अपना प्रति-

लिपि बनाकर राणाके निकट भेजा और उसे अपना एक फर्मान भी दिया जिसमें लिखा था कि राणाजी निर्भय होकर रहें। उसपर अपनी सचाईके प्रमाणस्वरूप मैंने अपनी पञ्जेकी छाप कर दी †। अपने पुत्रको मैंने यह भी लिख भेजा कि 'जिस तरह हो उस तरह उस माननीय व्यक्तिकी इच्छाके अनुसार व्यवहार करने में त्रुटि न करना।'

"मेरे पुत्रने शुक्रुल्लह और सुन्दरदासके साथी शूपकर्ण और हरिदास झालाके द्वारा राणाजीके पास फर्मान भेज दिया और कहला भेजा कि आप मेरी सचाई और भक्ति पर विश्वास करके फर्मान ले लें। इसके बाद निश्चय हुआ कि २६ वीं तारीखको राणाजी मेरे पुत्रसे मिलने आवेंगे।

"अजमेरसे शिकारके लिये निकलकर खुर्रमका अधीनस्थ एक व्यक्ति जिसका नाम महमूदबेग था मेरे पास आया। उसने मुझे खुर्रमके हाथका लिखा एक पत्र देकर कहा कि 'राणा अमरसिंह आपके पुत्रसे मिल गये।'

"यह समाचार सुनते ही मैंने महमूद बेगको एक हाथी, एक घोड़ा और एक खञ्जर पुरस्कारमें देकर 'जुलफिकरखां'का खिताब दिया।"

सुलतान खुर्रम और राणा अमरसिंह तथा राजकुमार कर्ण और सुलतान खुर्रमकी मुलाकात होने और नूरजहां बेगमके द्वारा कर्णको पदवी मिलनेका वृत्तान्त।

"राणा अमरसिंह २६ वीं तारीख रविवारको दूसरे सामन्त राजाओंकी तरह उचित मान मर्यादा और शिष्टाचारके साथ मेरे पुत्रसे मिले। मुलाकातके समय

† हृदयमें विश्वास उत्पन्न करनेके लिये सचाईके प्रमाणस्वरूप हाथसे हाथ मिलाने या अपने हस्ताक्षर किये हुए पत्र पर अपने पंजेका निशान बना देनेकी प्रथा बहुत प्राचीन समयसे सभ्य जगत्में प्रचलित है। शक और तातारी भी सन्धिपत्र स्वीकृतिपत्र इत्यादिमें पंजेका निशान बनाते थे। टाड साहबने लिखा है कि जहांगीरने राणा अमरसिंहसे सन्धि करके उनके पास अपने पंजेका निशान करके जो प्रमाणपत्र भेजा था वह अबतक राणाजीके दफ़्तरमें वर्त्तमान है। लाल चन्दनमें पंजेको डुबाकर फर्मान पर उसका निशान किया गया था। वह निशान अबतक स्पष्ट है।

राणाने खुर्रमको एक बहुमूल्य लाल, स्वर्ण जड़े हुए कई हथियार, ७ हाथी और ८ घोड़े खिराजकी रीतिपर दिये । मेरे पुत्रने राजाओंके साथ जैसा शिष्टाचार और व्यवहार किया जाता है उस शिष्टाचार और व्यवहारसे उनको ग्रहण किया। इसके बाद राणाने मेरे पुत्रका घुटना छूकर माफी मांगी। खुर्रमने उनको बहुत भरोसा दिलाया और एक हाथी, एक घोड़ा, एक तलवार और उनके योग्य खिलत दी। उनके साथी राजपूतोंमें यद्यपि एकसौसे अधिक पुरस्कार पानेके योग्य नहीं थे तौभी १२० जोड़े कपड़े, ५० घोड़े और १२ जड़ाऊ सरपेच उनमें बाँटे गये। इन राजाओंमें एक यह प्रथा प्रचलित है कि वे कभी पिता पुत्र एकसाथ हमलोगोंसे मिलनेके लिये नहीं आते §। राणा अमरसिंहने भी ऐसाही किया अर्थात् अपने कुमारको वे साथ नहीं लाये। उसी दिन सुलतान खुर्रमने उनको बिदाई कर दी। राणाके जानेसे पहले उसने उनसे प्रतिज्ञा करा ली कि युवराज कर्णको वे शीघ्र भेजें। कर्ण आया। हाथी, तलवार, खञ्जर और कपड़ोंके जोड़े उसे दिये गये और उसी दिन वह खुर्रमके साथ मुझसे मिलने आया।

"अजमेरमें मुझसे मिलकर खुर्रमने कहा—'अगर आप इजाजत दें तो मैं कर्णको आपके पास लाऊँ।' मैं बोला 'हां, बुलाओ।' कर्ण आकर बड़े सम्मानसे मिला। खुर्रमके अनुरोधसे मैंने उसके बैठनेका स्थान अपनी दाहिनी ओर नियत किया और योग्य खिलत दी। कर्ण बड़ा शर्मीला जवान था। वह सदा पहाड़ोंमें रह आया था; ऐश आरामकी चीजोंका उपभोग करनेका उसे बिलकुल अभ्यास नहीं था। शाही दरबारकी चमक दमक उसने कभी न देखी थी। वह कम बोलता और हमलोगोंके साथ कम बैठना उठना चाहता। उसके मनमें विश्वास पैदा करनेके लिये मैं हर दिन अपने प्रेम और आदरका उसे कुछ न कुछ परिचय देता। उसके आनेके दूसरेही दिन मैंने उसे एक जड़ाऊ खञ्जर दिया और तीसरे दिन एक सजा सजाया सुन्दर ईराकी घोड़ा प्रदान किया। उसी दिन मैं उसको अपनी बेगम नूरजहां बानूके पास ले गया। नूरजहांने उसको ये चीजें दीं,—एक हाथी जो गहनोंसे आभूषित था, एक घोड़ा, एक तलवार, आदि। उसी दिन

§ टाड साहब लिखते हैं कि विश्वासघातकी आशङ्कासे हिन्दू राजे पिता पुत्र एकसाथ शत्रुके यहां नहीं जाते थे।

मैंने उसको बहुमूल्य मोतियोंका एक हार और चौथे दिन एक हाथी उपहारमें दिया। मेरी यही इच्छा हुआ करती थी कि हर तरहकी नायाब और सुन्दर चीजें उसे दूं। अतएव जो कोई नायाब और सुन्दर चीज मुझे मिलती मैं उसको देता। एक रोज मैंने उसे तीन तुर्रा पत्ती और तीन शिकारी बाज दिये। ये छहों पत्ती इतने पलुए हो गये थे कि हाथ बढ़ाते ही आ बैठते थे। फिर एक जिरहबख्तर और दो कीमती अङ्गूठियां दीं। उस महीनेके अन्तिम दिन मैंने और बहुत सी चीजें उसको दीं,—जैसे गलीचे, गद्दे, इत्र, सोनेके बर्तन और दो गुजराती बैल।

"दसवां वर्ष।—इस समय मैंने कर्णको अपनी जागीरको † जानेकी छुट्टी दी। बिदाईके समय उसे एक हाथी, एक घोड़ा और ५० हजार रुपये मूल्यका मोतियोंका एक हार दिया। उस बार कर्ण जितने दिनोंतक मेरे पास था उस बीचमें उसने मुझसे जो चीजें पाईं उनका मूल्य १० लाख रुपयेसे अधिक होगा। मेरे सिवा मेरे पुत्र खुर्रमने जो चीजें दी थीं उनका मूल्य इसमें शामिल नहीं किया गया। उसके साथ मैंने मुबारिकखांको कर दिया और मुबारिकखांके द्वारा राणाजीको एक हाथी, घोड़ा और बहुतसे गुप्त सन्देसे भेजे।

"हिजरी १०२४ सालमें सफरके आठवें दिन राजकुमार कर्णको पञ्चहजारी का मन्सब दिया गया ‡। उस समय मैंने उसे मोतियोंका एक कङ्गन दिया जिसमें बड़े मूल्यका एक लाल जड़ा था।

"उसी साल मुहर्रमकी २४ वीं तारीखको कर्णका १२ वर्षकी उमरका पुत्र जगत्सिंह दरबारमें आया और उचित सम्मान वन्दनाके बाद उसने अपने पिता

† कितने दुःखकी बात है कि जो चित्तौड़पुरी स्वाधीनताकी पवित्र भूमि और वीरोंको उत्पन्न करनेवाली थी, उसको जहांगीरने 'जागीर' कहा! यह समयकी महिमाके सिवा और कुछ नहीं है; क्योंकि यदि ऐसा न होता तब तो सभी राजपूत बप्पारावल और प्रतापसिंह जैसे होते!

‡ राजपूतानेकी प्राचीन ऐतिहासिक पुस्तकोंसे पता लगता है कि इनके अतिरिक्त राणाजीने निम्नलिखित राज्य भी पाये थे,—खेरार, फूलिया, बेदनोर, मण्डलगढ़, जिरण, नीमच और भिनसरोर। देवल और डूंगरपुरके सामन्त राजाओं पर आधिपत्य भी प्राप्त किया था।

और दादाकी अर्जी पेश की। उसके चेहरेसे उसके प्रतिष्ठित खान्दानमें जन्म लेनेका स्पष्ट परिचय मिलता था ¶। उसके साथ कृपाका बर्ताव कर और कई चीजें उपहारमें देकर मैं उसे सन्तुष्ट करने लगा।

"शाबानकी १० वीं तारीखको जगत्सिंह मेरी अनुमति पाकर अपने देशको लौट गया। जानेके समय मैंने उसे २० हजार रुपये, एक घोड़ा, हाथी तथा बहुत तरहकी खिल्लतें दीं और उसके हाथ कर्णके शिक्षक हरिदास झालाको ५ हजार रुपये, एक घोड़ा और कपड़े भेजे तथा राणा अमरसिंहके लिये सोनेकी छः मूर्त्तियां दीं *।

"ग्यारहवां वर्ष।—२८ वीं ता: रबीउलअकबर।—मेरी आज्ञासे राणा अमरसिंह और कर्णकी सङ्गमरमरकी दो प्रतिमूर्त्तियां तैयार की गईं। जिस तारीखको वे बनकर मेरे पास आईं उसी तारीखको मैंने आज्ञा दी कि ये आगरेके शाहीबाग में रखी जावें।

"मेरे राजत्वके ११ वें वर्ष एतेमादखांने अर्जीके द्वारा मुझे सूचित किया कि शाहजादा खुर्रम जब राणा अमरसिंहके राज्यमें गया तब उन्होंने तथा उनके राजकुमार कर्णने उसको ७ हाथी, २७ घोड़े और बहुतसे जवाहरात तथा सोनेके गहने इत्यादि करकी रीत पर दिये। खुर्रमने उनमेंसे केवल तीन घोड़े लिये और

¶ प्रसिद्ध सर टामस मनरो इङ्गलैण्डके बादशाह प्रथम जेम्सकी तरफसे दूत बनकर जहांगीरके दरबारमें आये थे। भारतवर्षमें आकर मुगलों और हिन्दुओंके विषयमें अपने देशमें उन्होंने जो पत्र भेजे थे उनमें जाननेयोग्य बहुतसी ऐतिहासिक बातें मिलती हैं। सन् १६१५ की २८ वीं जनवरीको एक पत्रमें कैण्टरबरीके आर्चबिशप (प्रधान धर्माध्यक्ष) को उन्होंने लिखा था कि "महाराज पुरुके वंशधर यहां मुगल दरबारमें राजाकी तरह रहते हैं। गये सालसे पहले कोई कभी इनको परास्त नहीं कर सका था। सच तो यह है कि लड़ाईमें जीतकर नहीं किन्तु खरीदकर ये यहां लाये गये हैं। मुगल बादशाहने इनको तलवारके जोरसे नहीं वशमें किया बल्कि चतुराई और कौशलसे।"

* टाड साहबने यह नहीं लिखा कि ये मूर्त्तियां कैसी थीं। वे लिखते हैं कि इस विषयमें उनको कुछ मालूम न हो सका।

बाकी चीजें लौटा दीं। उसी दिन निश्चय हुआ कि लड़ाईके समय कर्णको १५०० राजपूत सवारोंके सहित खुर्रमके पास हाजिर रहना पड़ेगा।

"तेरहवां वर्ष।—इस वर्ष राजकुमार कर्ण मेरी दक्षिणकी जीतों पर बधाइयां देनेके लिये मेरे पास आया। उस समय मैं सिन्दलामें था। कर्णने वहां आकर मुझे १०० मुहरें, १००० घोड़े, २१००० रुपये मूल्यके सोने चांदीकी चीजें और जवाहरात, कई ऊँचे सिरके हाथी और घोड़े नजर किये। उनमेंसे सिर्फ कुछ घोड़ोंको वापस कर मैंने बाकी सब चीजें रख लीं और उसके दूसरे दिन उसे एक बहुमूल्य खिलत दी। इसके बाद उसे हाथी, घोड़े, तलवार और खञ्जर और उसके पिताके लिये एक घोड़ा देकर मैंने फतहपुरसे उसे रुखसत किया।

"चौदहवां वर्ष।—हिजरी १०२९, रबीउलअौवलके १७ वें दिन मैंने राणा अमरसिंहके मरनेकी खबर पाई। राणाके पुत्र भीमसिंह और पौत्र जगत्सिंह यह समाचार लेकर मेरे पास आये। मैंने उनको बहुत तरहकी खिल्लतें दीं और राजा किशोरीदासके द्वारा धैर्य धरानेका पत्र, कई अच्छे घोड़े और गद्दी होनेके समय जिन चीजोंकी आवश्यकता होती है उन चीजोंको भेजकर कर्णको "राणा" की उपाधि दी। फिर ७ वीं शव्वालको बिहारीदास बर्मनके हाथ मैंने राणा कर्णके पास उसकी सनद भेजी जिसपर मेरे पञ्जेका निशान था और कहला दिया कि उसका पुत्र सहायता पहुंचानेवाले सैनिकोंका दल लेकर मेरे पास आवे।"

जहांगीरके हाथके लिखे हुए विवरण ज्योंका त्यों अनुवाद ऊपर प्रकाशित किया गया। अब हम इस विवरण पर संक्षेपमें विचार करते हैं। जहांगीरका हृदय ऊँचा था यह तो उसके लिखे वृत्तान्तसे स्पष्ट ही मालूम हो जाता है। इस वृत्तान्तकी प्रति पंक्ति और प्रत्येक शब्दसे उसकी उच्चहृदयता साफ झलक रही है। वीरवर प्रतापसिंहके वीर पुत्र पर विजय प्राप्तकर वह बहुत आनन्दित हुआ, इससे उसका बड़प्पन और भी प्रकट होता है। पर उस आनन्दके कारण उसकी गम्भीरतामें अन्तर नहीं आया; अर्थात् वह चञ्चल नहीं हो गया। यद्यपि इस वृत्तान्तका आरम्भसे अन्ततक उसने निरपेक्षतासे वर्णन किया है, परन्तु एक दो स्थानोंमें उसने भूलें की हैं। किस बड़ी शक्तिके प्रभावसे गिह्लोट राजे मुसलमान बादशाहोंका मुकाबला कर सकते थे, यह जहांगीर न समझ सका; इसीसे कहीं

वहीं पर उसने कुछका कुछ समझा। पर उसने वीर अमरसिंहका अपमान नहीं किया। अमरसिंहके मनका यह भाव वह समझ गया था कि स्वदेश छोड़ना या कैदमें जाना पड़ेगा यही विचारकर राणाजीने अन्तमें उसके साथ सन्धि स्वीकार की। कष्टित, निरुपाय, निस्सहाय राजपूत वीरके हृदयका दुःख समझकर जहांगीर भी दुःखित हुआ और इसी कारण उसने राणाजीके अनुरोधके अनुसार उनके दुःखके दबानेका यत्न किया। जब अमरसिंहकी सब आशाएँ चली गईं तब वे जहांगीरके वशमें हुए और उसके दरबारमें जाना स्वीकार किया; परन्तु, स्वयं यह अपमान वे न सह सके, अतएव अपने पुत्र कर्णको उन्होंने दरबारमें भेजा। जहांगीर ये बातें समझ गया; वह जान गया कि बहुत कष्टमें पड़कर ही राणाजीने ऐसा किया। जो गिह्लोट वीर प्राय: एक सहस्र वर्षसे पूरी पूरी स्वाधीनता भोगते आये थे, पराधीनता क्या चीज है यह जो जानते भी नहीं थे, उन्हींके वंशमें उत्पन्न होकर आज अमरसिंहने अपने दुर्भाग्यसे पराधीनता स्वीकार की! यह कम दुःखकी बात नहीं है। जहांगीरने अपने हाथोंसे उनके गलेमें पराधीनताका तौक पहना दिया—अपने हाथोंसे उनको ऊँचेसे ऊँचे आसनसे उतारकर अन्धेरे गड्ढेमें ढकेल दिया,—और निरुपाय निस्सहाय अमरसिंहने मन्त्रमुग्ध सर्पकी तरह वशमें होकर यह अपमान सह लिया। नहीं तो उनके सारे शरीरमें जो आग बल रही थी—उनके अङ्ग अङ्गमें जो कांटे चुभ रहे थे—उनके कारण यदि दूसरा कोई होता तो यह अपमान कभी न सह सकता;—अवश्य ही उसका हृदय फट जाता और पराधीन होनेसे पहले वह प्राण त्याग देता। अमरसिंहको ऐसाही कष्ट हुआ था जिसका यह परिणाम होता; परन्तु केवल अपने सहन करनेके स्वाभाविक गुणसे उन्होंने यह बात सह ली; क्योंकि वे जानते थे कि जो मनुष्य कोई बात सहन नहीं कर सकता वह मनुष्य कहे जानेके योग्य नहीं है और मनुष्य योनिमें उसका जन्म लेना वृथा है। यह अपूर्व गुण केवल अमरसिंहमें नहीं था, बल्कि यह गिह्लोट कुलका सदाका गुण था। अमरसिंहने इस अपूर्व गुणको प्रत्यक्ष कर दिखाया, अर्थात् सच्ची सहनशीलताका परिचय दिया। स्वाधीनता खो जानेसे उनके हृदयको कड़ी चोट पहुंची थी। जहांगीर इसको समझ गया था और इससे उसे भी दुःख हुआ था। इसी कारण वह राणाजीका अनुरोध न टाल सका और

इसी कारण खुर्रमसे उसने कहा था कि उस माननीय व्यक्तिकी इच्छाके अनुसार कार्य करनेमें न चूकना *।

वीरवर प्रतापसिंहके वीर पुत्र पर विजय प्राप्त कर जहांगीरको अवश्य ही आनन्द हुआ; परन्तु उस आनन्दमें बेहूदगी नहीं थी और न नीच लोगोंकी तरह ढिठाई थी;— किन्तु वह आनन्द सरलता शान्ति और गम्भीरतासे भरा हुआ था। जहांगीरने शहरमें घर घर साधारण आनन्द और उत्सव मनाये जानेकी आज्ञा न देकर केवल यह किया कि राणाके प्यारे हाथी आलमगुमान पर सवार होकर शहरमें गश्त लगाई और गरीबोंको धन रत्न दान किया, इससे उसके गम्भीर और शान्त आनन्दका परिचय मिलता है। राणा अमरसिंह पर विजय प्राप्त करनेमें उसने अपना बड़ा गौरव समझा था; क्योंकि वह जानता था कि सीसोदीय राजे सब राजपूत राजाओंमें श्रेष्ठ होते हैं। इस श्रेष्ठ राजवंश पर विजयी होनेके लिये उसके पूर्वज बड़ा उद्योग, यत्न, परिश्रम, धनव्यय और सेनासंहार कर चुके थे; परन्तु फिर भी वे कृतकार्य नहीं हुए थे। आज जहांगीरके द्वारा इतना बड़ा काम हो गया; अतएव ऐसा होनेसे उसने अपना बड़ा गौरव समझा। तलवारके जोरसे जो कार्य नहीं हुआ; कष्ट, उपद्रव, दुःख, वेदना पहुंचानेसे जो कार्य नहीं हुआ; लालच और धमकी देनेसे जिस कार्यमें सफलता नहीं हुई; १७ लड़ाइयोंमें असंख्य हिन्दू मुसलमानोंका खून बह जाने पर भी जो कार्य सम्पादित न हो सका; वह आज इतने दिन बाद जहांगीरके पुत्र खुर्रमके सदाचरण और मीठेपनसे बिना परिश्रम और यत्न सहजमें हो गया। जहांगीर जानता था कि भारतवर्षका शासन जोर दिखाकर या तलवारके जोरसे किया नहीं जा सकता। यह बात मुगलोंके सिवा और किसने समझी? भला बताइये, दूसरी किस जातिने हिन्दुओं पर विजय पाकर अपनेको कृतार्थ माना? इतिहास आज मुगलोंकी इस उच्चहृदयताका परिचय देता है। विचारवान् निष्पक्ष जहांगीरकी लेखनी आज स्पष्ट कहे देती है कि संसारको विदित हो कि "जोर जुल्म और जबर्दस्तीसे भारतवर्षका शासन कोई कभी नहीं कर सकता।"

* यहां पर पाठकोंको जान लेना चाहिये कि खुर्रमने जहांगीरकी आज्ञाके अनुसार ही किया।

जहांगीरने मेवाड़नरेश राणा अमरसिंहको पराजित करके अपना गौरव समझा; इसी कारण उसने उनके ज्येष्ठ पुत्र कर्णको भारतवर्षके दूसरे सब राजाओं से श्रेष्ठ आसन अर्थात् अपनी दाहिनी ओर बैठनेको स्थान दिया। इसी तरह अमरसिंह और कर्णके प्रति जहांगीरके जिन जिन कार्यों का वृत्तान्त मिलता है उन सबसे उसकी उच्चहृदयता वीरोचित गौरव और शिष्टाचारका परिचय प्राप्त होता है। सीसोदीय कुलका सम्मान करने और कर्णको सुखसे रखनेके लिये वह सदा यत्न करता रहता। पर एक बात समझनेमें उसने भूल की। कर्णके हृदय की ठीक दशा न समझकर उसने भूलसे कह दिया था कि "कर्ण शर्मीला जवान है।" विचार करनेसे मालूम होता है कि कर्णके इस "शर्मीलेपन"का एक महान् कारण था। कर्ण राजकुमार था; सुप्रसिद्ध पवित्र गिह्लोट कुलमें वह उत्पन्न हुआ था; उसका पिता महा बली पराक्रमी सौ नृपतियोंका वंशधर था; उसकी जन्म-भूमि गौरव और स्वाधीनताकी भूमि थी। वीरोंके उत्पन्न करनेवाले ऐसे पवित्र मेवाड़क्षेत्रमें जन्म लेकर--योग्य पिताका योग्य पुत्र होकर—उस जगन्मान्य वीर-कुलमें पैदा होकर—वह आज शत्रुओंका सेवक हो रहा था! उसके पूर्वज प्राण रहते जिन शत्रुओंको मेवाड़की सीमाके अन्दर पांव भी रखने नहीं देते थे, जिनको वे "दैत्य दानव" आदि कहते थे, आज विधाताने उन्हीं शत्रुओं—उपाय सहाय अवलम्ब सब कुछ लेकर उन्हीं शत्रुओं—की अधीनतारूपी बेड़ियोंमें जकड़ दिया! भला कर्ण जैसा तेजस्वी राजकुमार यह अपमान कैसे सह सकता था? जिन लोगोंसे राज्यशासनसे कुछ भी सम्बन्ध नहीं होता, जिनको जरा भी स्वाधीनता नहीं होती, वे तो जन्मभूमिकी दुरवस्था और जातीय स्वाधीनताका लोप होते देखकर दुःखित मथित और आहत होतेही हैं;—फिर कर्ण जो राजपुत्र था—सीसोदीय कुलका उपयुक्त राजपुत्र था—क्यों न दुःखित होता? जो लोग स्वदेशकी जन्मभूमिकी दुर्दशा पर आंसू नहीं बहाते या रञ्ज नहीं मानते वे मनुष्य नहीं कहे जा सकते। कर्ण राजाका पुत्र होकर स्वाधीनतासे वञ्चित हुआ; उसके पूर्वजोंकी पवित्र भूमि 'जागीर' कही गई; वीराग्रगण्य स्वाधीनताप्रिय सौ नृपतियों का वंशधर होकर वह जागीरदार कहलाया! जिस शत्रुने उसकी दशा ऐसी हीन की वह उससे बातें करके कैसे प्रसन्न हो सकता था? उस शत्रुने उसकी सन्तुष्ट

रखनेके लिये पराधीनताका बोझ कम कर दिया, उसके छिने हुए गोहार राज्यको फिर उसके अधिकारमें कर दिया, उसको पञ्चहजारीका मन्सब दिया; यह सब सच है; पर इन सबके बदलेमें जो अमूल्य धन ले लिया उसकी बराबरी तो इन्द्रकी अमरावती और कुबेरके कोषागार भी नहीं कर सकती। कर्णका स्वाधीनतारूपी रत्न छिन गया था; यह उसने अपनी आंखों देखा कि अब उसके वापस मिलनेका उपाय नहीं है। इसीसे वह प्रायः चुप रहा करता और इसी कारण जहांगीरने उसे "शर्मीला" और "कम बोलनेवाला" समझा था।

राणा अमरसिंहने उदारहृदय जहांगीरसे जैसा सम्मान पाया था नहीं कहा जा सकता कि वैसा सम्मान और आदर किसी हारे हुएने किसी जीता राजासे कभी पाया है या नहीं। पर यह प्रतिष्ठा और मर्यादा तेजस्वी अमरसिंहको सुखी करनेके बदले उनके हृदयको जलाती थी। जहांगीरके किये हुए सम्मान आदरके विषयमें वे जितना विचार करते उनको उतना ही अधिक दुःख होता। इसी शोकमें कभी कभी जोशमें आकर वे खुर्रमकी उदारता और जहांगीरके आदरपूर्ण व्यवहारोंकी बहुत धिक्कारते। खुर्रम राजपूती वीरताका आदर करता और राजपूत वीरोंको चाहता। उसीके निष्कपट आदर और राजपूतानुराग पर मुग्ध होकर राणा अमरसिंहने जहांगीरसे सन्धि कर ली थी; नहीं तो यदि जन्म भर लड़ते बीतता और कठोरसे कठोर अत्याचार सहने पड़ते तौभी वे कभी शत्रुओंके वशमें न होते। खुर्रम बड़ा सीधा सादा और उदार व्यक्ति था। उसकी बातें भी बड़ी प्रिय थीं। राणाजीसे सन्धि और मैत्री करनेकी इच्छा कर उसने उनसे कहला भेजा कि "यदि आप नगरके बाहर आकर बादशाहके पञ्जेका निशान किया हुआ प्रमाणपत्र स्वीकार कर लें तो मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि उसी समय सब मुसलमानोंको मेवाड़से हटवा दूंगा;—एक भी मुसलमान मेवाड़में दिखाई न देगा।" तेजस्वी राणा अमरसिंहको यह बात पसन्द नहीं आई। भला वीरवर प्रतापसिंहके पुत्र होकर वे एक मनुष्यकी—हाड़ मांसके एक पुतलेकी—विशेषकर स्वाधीनता छीननेवाले एक विधर्मीकी—अधीनता कैसे स्वीकार कर सकते थे? शरीरमें प्राण रहते तो वे कभी इस बात पर राजी नहीं हो सकते थे। खुर्रमसे वे मिले अवश्य, परन्तु सन्धिका प्रमाणपत्र ग्रहण करना उन्होंने स्वीकार नहीं किया; बल्कि एकदम उसकी उपेक्षा की।

जिस दिन खुर्रम और राणाजीकी मुलाकात हुई उसी दिन राणाजीने राज-काज छोड़कर मुनियोंकी भांति शान्तिसे जीवन बितानेका निश्चय किया और इस निश्चित बातके अनुसार शीघ्र कार्य भी कर डाला *। खुर्रमसे मिलकर राजधानीमें लौटने पर उन्होंने सब सरदारोंको अपने पास बुलाया और उनके आगे अपनी इच्छा प्रकट की। इसके बाद राजकुमार कर्णको राजतिलक लगाकर वे राज्यसे बिदा हुए। विदा होनेके समय पुत्रका (जो कि उनके पांवों पर गिरा हुआ था) सिर चूमकर उन्होंने कहा—"बेटा, देखो मेवाड़का मान गौरव अब तुम्हारे हाथ है।" राजधानीसे चलकर वे नौचौकी † नामक पहाड़ीस्थानमें गये और वहीं मुनियोंकी भांति सुख दुःखमें समान भावसे रहने लगे। फिर उस तापसाश्रमसे वे नहीं लौटे और राजधानीमें नहीं गये। फिर जिस दिन उनका स्वर्गवास हुआ उस दिन उनका शव राजधानीमें पहुंचाया गया और उनकी अन्तिम क्रिया की गई।

अमरसिंहके पवित्र चरित्रकी अधिक समालोचना करनेकी आवश्यकता नहीं है। वे वीरवर प्रतापसिंहके योग्य पुत्र और माननीय गिह्लोट कुलके योग्य राजा थे। जो शारीरिक और मानसिक गुण वीरोंके भूषण होते हैं उन सबसे वे भूषित थे। मेवाड़के सब राजाओंसे वे मोटे ताजे और बलिष्ठ थे, पर और नृपतियोंकी तरह गोरे नहीं थे। प्रायः उनके मुख पर गम्भीरता और दुःखकी छाया देख पड़ती; परन्तु यह उनकी स्वाभाविक बात नहीं थी; जान पड़ता है कि उनको सदा दुःख में रहना पड़ा और विपत्तियां भोगनी पड़ीं इसी कारण वे कुछ चिन्तित रहते। अस्तु, अपनी उदारता, बुद्धिमत्ता, वीरता, दया और न्यायके सबबसे दैनिक, सर-

* संवत् १६७२ (सन् १६१६ ई०) में राणा अमरसिंह पुत्रको राज्यकार्य सौंपकर संन्यासी हुए; पर "फरिश्ता" लिखता है कि संवत् १६६९ (सन् १६१३ ई०) में उन्होंने ऐसा किया।

† टाड साहब कहते हैं कि इसी जगह खुर्रम राणाजीसे मिला था। नगरके उत्तर ओर एक पहाड़ी पर उक्त "नौचौकी" नामक इमारत थी। उसका टूटाफूटा कुछ हिस्सा अबतक वर्त्तमान है। राणा उदयसिंहने इस इमारतको बनवाया था।

दार, प्रजा, आत्मीय, कुटुम्ब सब उनको देवताके समान पूजते और उनपर भक्ति-भाव रखते थे। उनके गुणोंके अनेक वृत्तान्त भट्टग्रन्थोंमें और राजस्थानके कितने ही स्तम्भों और पहाड़ी शिलाओं पर खुदे देख पड़ते हैं।

बारहवां अध्याय।

कर्णका उदयपुरकी किलाबन्दी करना और उसकी शोभा बढ़ाना;—बादशाही दरबारमें उपस्थित रहनेकी जिम्मेदारीसे मेवाड़के राणाओंका छुटकारा पाना;—बादशाहकी सहायताके लिये राणाजीकी ओरसे भेजी हुई सेनापर भीमकी अफसरी;—परवेजके विरुद्ध भीमका सुलतान खुर्रमसे मिल जाना;—जहांगीरका राजद्रोहियों पर आक्रमण करना;—भीमका मारा जाना;—खुर्रमका भागकर उदयपुर जाना;—राणा कर्णका आदरपूर्वक उसे अपने यहां स्थान देना;—राणा कर्णका देहान्त;—राणा जगत्सिंहका सिंहासनारोहण;—जहांगीरकी मृत्यु और शाहजहां नाम रखकर खुर्रमका बादशाही तख़्तपर बैठना;—मेवाड़में सुखशान्ति—राणा जगत्सिंहका पिशोला झीलके टापुओं पर महल बनवाना;—चित्तौड़की मरम्मत;—जगत्सिंहकी मृत्यु;—राणा राजसिंहका राज्याभिषेक;—शाहजहांको गद्दीसे उतारकर औरङ्गजेबका बादशाहत करना;—जहांगीर और शाहजहांके हिन्दुओंसे प्रेम करनेका असली कारण;—औरङ्गजेबका चरित्र-वर्णन;—राजपूतों पर उसका "जिजिया" या मुण्ड कर लगाना;—रूपनगरकी राजकुमारीके साथ औरङ्गजेबका विवाह स्थिर होनेपर राणाजीका उस राजकुमारीको हरकर अपने नगरमें ले जाना;—औरंगजेबका युद्धके लिये प्रस्थान करना;—गिरवाकी घाटी;—राजकुमार अकबरका पराजित होना;—उसका पहाड़ोंमें घिर जाना;—राणाके ज्येष्ठ पुत्रकी सहायतासे उसका छुटकारा होना; दिलेरखांका पराजय;—लड़ाईमें राणा और उनके सहायक राठौड़ोंके द्वारा औरङ्गजेबका पराजित होना;—औरंगजेबका लड़ाईका मैदान छोड़कर चला जाना;—राणाके मन्त्रियोंके द्वारा मालवेका लूटा जाना;—एकताबद्ध राजपूतोंका अजीमको हराना और चित्तौड़से निकाल भगाना;—मेवाड़का मुगलोंके ग्राससे छुटकारा;—मारवाड़में भयङ्कर युद्ध;—

सीसोदियों और राठौड़ोंका मिलकर सुलतान अकबरको भगाना;—राजपूतोंकी चाल;—औरंगजेबको उतारकर राजकुमार अकबरको गद्दी पर बैठानेका विचार;—इस विचारमें निष्फलता;—बादशाहका राणाजीसे सन्धि करनेकी इच्छा प्रकट करना;—सन्धि;—गहरे जखम लगनेके कारण राणाकी मृत्यु;—उनके और औरङ्गजेबके चरित्रका मिलान;—राजसमुन्द झील;—भयङ्कर अकाल और महामारी।

मेवाड़के अन्तिम स्वाधीन अधिकारी राणा अमरसिंहका ज्येष्ठ पुत्र कर्ण अपने पिताके त्यागे हुए सिंहासन पर संवत् १६७७ वैक्रमीय (सन् १६२१ ई०) में बैठा। आज मेवाड़की वह पहलेकीसी सुन्दर अवस्था नहीं थी। जिस गौरवसे गौरवान्वित होकर एक समय मेवाड़की भूमिने संसार भरसे बढ़कर अधिकार प्राप्त किया था और सूर्यवंशी बप्पारावलके वंशधर एक एक प्रचण्ड सूर्यकी तरह तेजोवान् थे, आज मेवाड़भूमिका वह गौरव नहीं था;—उजियाले मेवाड़राज्य पर इस समय दुःख शोककी गहरी अँधियारी छा रही थी; मेवाड़के सूर्यसदृश राजपुत्र अपनी प्रखर ज्योति खोकर एक एक साधारण ग्रहकी तरह क्षीणतेज हो रहे थे! भारतके हिन्दू राजाओंकी इस समय यही दशा हो रही थी। उनमें उनकी निजकी तेजो या ज्योति नहीं थो। अपनी शक्ति खोकर दूसरेकी शक्तिके आकर्षणसे अपनी दशा भूले हुओंकी भांति वे प्रचण्ड मुगलसूर्यके चारों ओर घूम रहे थे। जो बड़ी शक्ति किसी समय हिन्दूरूपी सूर्यकी प्रत्येक रोमरूपी किरणसे प्रकट होकर भारतके सब नृपतियोंको अपने इशारों पर चलाती थी, वह महती शक्ति आज मुगलरूपी सूर्यमें थी। आज इस मुगलसूर्यका तेज रोकनेकी सामर्थ्य किसी हिन्दू राजामें नहीं थी। समयके प्रभावसे मुगलोंने यह शक्ति पाई थी और फिर समयके ही प्रभावसे यह शक्ति उनसे छिन भी जायगी। ऐसा संसारका नियम ही है। दुनियामें कोई इस नियमको कभी बदल नहीं सकता। इसी कभी न बदलनेवाले नियमके कारण "हिन्दूसूर्य" बप्पारावलके वंशधर इस समय अपना तेज नष्ट कर और आकर्षणमें पड़कर साधारण ग्रहोंकी तरह मुगलसूर्यके चारों ओर परिक्रमा कर रहे थे। परन्तु यद्यपि मुगलसूर्यकी प्रबल शक्ति उनको अपनी ओर खींचे

हुए थी तौभी कभी कभी वे अपना स्वाभाविक तेज और प्रखरता दिखा देते थे *।

वीरवर बप्पारावलके वंशधरोंने अपना पूर्व तेज और प्राचीन शक्ति खो दी थी; पर पुरानी बातोंको याद वे नहीं भूले थे। यह यादही उनकी जीवनी थी। यदि वे इसे भूल जाते तब तो राजपूत नामही संसारसे चला जाता। जिस दिन महाराज कनकसेन सौराष्ट्रमें आये उस दिनसे इस समयतक जबका हाल हम लिख रहे हैं डेढ़ हजार वर्ष बीत गये हैं। इस डेढ़ हजार वर्षके बीचके समयमें कालचक्रमें पड़कर महाराज कनकसेनके वीरवंशकी जो अवस्थाएँ हुईं उनका वर्णन हम क्रम क्रमसे कर चुके हैं। उन अवस्थाओंका दृश्य अबतक हमारे नेत्रोंके सामने हैं। खृष्टीय दूसरी शताब्दीके मध्यमें सूर्यवंशी महाराज कनकसेनका सुदूर लोहकोट छोड़कर सौराष्ट्रमें आना; चारसौ वर्षों तक उनके वंशधरोंका लगातार शासन करना; शिलादित्यकी उत्पत्ति; असभ्य पारदोंका आक्रमण करना; वह आक्रमण रोक न सककर महाराज शिलादित्यका समग्र कुटुम्बके सहित मारा जाना; शोभायमान सौराष्ट्रमें उपद्रवी पारदोंका लूट मार मचाना; उस भयङ्कर युद्धके बाद एकमात्र पुष्पवतीका नष्ट होते हुए सूर्यवंशवृक्षकी प्राणप्रतिष्ठा करनेके लिये जीवित रहना; ग्रहादित्यका जन्म; "ग्रहिलोट" (गिह्लोट) नामकी उत्पत्ति; ईडर राज्य पाना; भीलोंके उपद्रवसे ईडर छोड़ना; बप्पारावलका जन्म; चित्तौड़ पर अधिकार पाना; उदयपुरका बसाया जाना; सीसोदीय कुलका गौरव; फिर हीन दीन दशामें उस गौरवका अन्त आना; बप्पारावलका झण्डा मुसलमानोंके आगे नीचा होना;—इत्यादि बातें स्मरण हो रही हैं। जहांतक सम्भव था इन दृश्योंके ठीक ठीक दिखा देनेमें त्रुटि नहीं की गई। परन्तु अबसे मेवाड़का नया युग आरम्भ हुआ;—सफेद टापूसे विशाल सप्तसिन्धु पारकर कुछ अंगरेज इन हीनदशाग्रस्त सीसोदीय राजाओंका उद्धार करनेके लिये भारतमें आये। उनके आनेसे सारे भारतवर्षमें कैसा नयापन छा गया और भारतवासी किस अवस्थामें हुए अब हम इन दो बातों पर विचार करते हैं।

* कदाचित् पाठक यह बात जानते ही होंगे कि चन्द्र, पृथ्वी और समस्त ग्रह उपग्रहादि सूर्यके चारों ओर फेरी दिया करते हैं। सूर्यमें इन सबको आकर्षित करनेकी शक्ति है।

कर्णमें सब राजपूती गुण वर्त्तमान थे;– वह वीर सहनशील और साहसी था और अपने कर्त्तव्यको समझता था। पिछली लड़ाइयोंमें मेवाड़का खजाना खाली हो गया था; कर्णने जिन उपायोंसे खाली खजानेको भरा उससे उसके अन्तिम दो गुणों अर्थात् उसके साहस और सहनशीलताका स्पष्ट परिचय मिलता है। एक के बाद दूसरी और दूसरीके बाद तीसरी इस प्रकार बराबर लड़ाइयां होते होते मेवाड़का राजकोष एकदम खाली हो गया था। जब राज्यमें धन एकत्र करनेका कोई उपाय न दिखाई दिया तब राजकुमार कर्णके मनमें एक और विचार उत्पन्न हुआ। इस नये सोचे हुए विचारके अनुसार कार्य करनेसे धन एकत्र हो गया; अर्थात् किसीसे कुछ न कहकर कर्ण चुपचाप केवल कुछ सवारोंको साथ लेकर सूरतमें गया और वहां बड़ी वीरतासे चढ़ाई करके बहुत धन रत्न ले आया। इससे वह अपने देशकी दुर्दशा दूर करनेमें समर्थ हुआ।

पहले ही कहा जा चुका है कि राणा कर्ण साहसी और वीर राजा थे; परन्तु दुःखकी बात है कि अच्छा अवसर न मिलनेके कारण इन दोनों बड़े राजगुणोंका परिचय वे न दे सके। बहुत लोग यह प्रश्न कर सकते हैं कि जब स्वाधीन मेवाड़-भूमिको एक विधर्म्मीने "जागीर" कहा तब वे कैसे चुप रह गये? तलवार खींचकर उन्होंने ऐसा कहनेवालेसे बदला क्यों न लिया? इस प्रश्नके उत्तरमें हम केवल इतना कह सकते हैं कि इसमें सन्देह नहीं कि मुगल बादशाहने मेवाड़को "जागीर" कहा, परन्तु कर्णको उसने कभी जागीरदारकी दृष्टिसे नहीं देखा, बल्कि वह उनके साथ सदा अपने एक प्रधान मित्रकी तरह व्यवहार करता। कर्णने उसके भले बर्तावके विरुद्ध कार्य करके राज्यमें अशान्ति फैलाना उचित नहीं समझा। यदि वे लड़ते भिड़ते तो कौन कह सकता है कि उनको सफलता ही होती? सम्भव था कि ऐसा करनेसे जीत होनेके बदले सीसोदीय कुलका नाश हो जाता! देश काल पात्रका विचार करके काम करना सबका कर्त्तव्य है। जो लोग इस कर्त्तव्यकी ओर ध्यान नहीं देते वे इस संसारमें प्रतिष्ठा नहीं पा सकते। इस नीतिसे भरे वाक्यकी महिमा राणा कर्ण अच्छी तरह समझते थे, इसीसे उन्होंने इसके अनुसार कार्य किया। आवश्यकता समझकर उन्होंने उदयपुर को चारों ओरसे दीवारों और खांईसे घिरवाया और पिशोला झीलके जलको

रुकावटके लिये जो एक बांध बना था उसे बड़ा कराया। अबतक सीसोदीयकुल की रानियां राजमहलके जिस पाइनबागमें रहती हैं वह राणा कर्णका ही बनवाया हुआ है।

गिह्लोट राजे डेढ़ हजार वर्षसे भारतवर्षके सब राजाओंसे बढ़कर अधिकार पाते आये थे और उनका गौरव भी सबसे अधिक था। आज राणा कर्ण यह बड़ा गौरव खो देने पर भी अपने बड़े अधिकारसे वञ्चित नहीं हुए। बादशाहने उनको अपने तख्तकी दाहिनी ओर स्थान देकर उनके सम्मानकी रक्षा की। यद्यपि बादशाहने उनकी स्वाधीनता ले ली, पर कभी उनके साथ अधीन राजाओंकी तरह बर्ताव नहीं किया। मेवाड़के राणा जिसमें अपमान न समझें इसलिये जहांगीरने राणा अमरसिंहसे सन्धि करते समय नियम कर दिया था कि सीसोदीय कुलके राजकुमारोंको जबतक गद्दी न हो तबतक वे दरबारमें रहें और जिस दिन उनको गद्दी हो जाय और वे राणा कहे जाने लगें उस दिनसे दरबारमें उपस्थित रहनेकी जिम्मेदारीसे वे मुक्त हों। सन्तोषकी बात है कि इस कायदेका नियमानुसार पालन होने लगा। क्योंकि जबतक कर्ण पिताकी गद्दी पर नहीं बैठे थे तबतक उनको जहांगीरके दरबारमें उपस्थित रहना पड़ता था, परन्तु जिस क्षण उनको गद्दी मिली उस क्षण से उनके जहांगीरके दरबारमें उपस्थित रहनेकी आवश्यकता न रही। तब जिसका दर्जा उनके नीचे था दरबारमें उसने उनका स्थान पाया। इस प्रकार सीसोदीय राजे अपने पूर्वजोंका बड़ा गौरव खोकर भी बड़े पदसे विच्युत नहीं हुए। बादशाहके दरबारमें सब हिन्दू राजाओंसे बढ़कर सीसोदीय राजाओंका सम्मान था, अतएव सीसोदीय सरदारोंका भी सम्मान वहां बहुत बढ़ गया; वे दूसरे बराबरके राजपूत सरदारोंकी अपेक्षा अधिक माने जाने लगे।

थोड़ेही दिनोंमें सीसोदीय सरदारोंने मुगल बादशाहके अधीन जितने सामन्त थे सबसे अधिक प्रतिष्ठा प्राप्त की। समस्त सीसोदियोंमें कर्णके छोटे भाई भीमकी विशेष प्रसिद्धि हुई। बादशाहकी सहायताके लिये जो सेना सज्जित की गई थी भीम उसके सरदार थे। वे बड़े साहसी और तेजस्वी थे। खुर्रम उनको भाईकी तरह मानता और कोई काम उनसे सलाह लिये बिना न करता। दोनों की मित्रता दिनपर दिन बढ़ती ही गई; यहांतक कि खुर्रमने जहांगीरसे भीमको

पदवी बढ़ानेके लिये निवेदन किया। जहांगीर पुत्रकी इच्छा पूरी किये बिना न रह सका: उसने भीमको "राजा" की उपाधि देकर बूनस नदीके किनारेका राज्य दे दिया। तोडा नगरी वहांकी राजधानी थी। यह राज्य पाकर भी भीमकी अधिक अधिकार पानेकी इच्छा न दबी। वे इसका उपाय करने लगे कि सदा उनका नाम बना रहे और बूनसके किनारे उन्होंने एक नया नगर बसाया। उसका नाम राजमहल रखा। वह बहुत दिनोंतक उनके वंशधरोंके अधिकारमें रहा। राजमहल नगर इस समय नहीं है; पर उसके टूटे फूटे अंशसे उसके प्राचीन गौरवका स्पष्ट पता लगता है। वर्त्तमान अवस्था देखकर कहा जा सकता है कि किसी समय यह नगर बहुत समृद्ध और शोभासम्पन्न रहा होगा। परन्तु कालके कठोर हाथोंने उसे बिलकुल बर्बाद कर दिया है। मानों प्रकृति सती उन गिरे हुए ढेरोंमेंसे गम्भीर भावसे कहती है कि "इस संसारमें कोई अमर होकर नहीं आया। शोभा, सौन्दर्य, गौरव, मान, दर्प, गर्व, अहङ्कार सबका नाश हो जाता है।" दिन पर दिन मास पर मास, वर्ष पर वर्ष बराबर आते और कालसमुद्रमें डूबते जाते हैं और कालचक्र सुख दुःख दिखाता हुआ सदैव घूमा करता है। एक समय जिस राजपूतको भाई माननेमें शाहंशाह जहांगीरके बड़े लड़केने अपना अहोभाग्य समझा था जिससे मैत्री करके एक समय सुलतान खुर्रम परम सुखी हुआ था, हाय! आज * उसी राजपूतके अभागी वंशधर दुर्भाग्यसे दैनिक एक मुद्रा वेतन पर शाहपुरके राजाकी सेवा कर रहे हैं!

भीमसिंह स्वभावसे ही तेजस्वी और निडर थे। तुच्छ राज्य या तुच्छ "राजा" उपाधिके बदलेमें गौरव और पुरुषत्व बेचना उनको पसन्द नहीं था। बादशाह जहांगीरने उनको अपने वशमें करनेका उपाय किया पर उसका उपाय चल न सका; हजारों तरहसे कृपा दिखाकर भी वह भीमसिंहको मोहित न कर सका। खुर्रम और उनमें बहुत बनती यह देखकर उसको बहुत सन्देह होता। बाद इस शङ्कासे कि कहीं कुछ भीतरी बखेड़ा खड़ा न हो जाय उसने खुर्रमको भीमसिंहसे दूर करनेके लिये भीमको गुजरातका शासनकर्त्ता नियुक्त किया। पर भीमने इस पदवीकी परवा न करके खुर्रमके ही पास रहनेका निश्चय किया।

* आजका मतलब उस समयसे है जिस समय टाड साहबने यह ग्रंथ लिखा था।

जहांगीरको जिस बातका सन्देह था वही आगे आई। खुर्रम अपने बड़े भाई परवेजको दूर कर पिताके राज्य पर स्वयं अधिकार करनेका उद्योग करने लगा। इस उद्योगके सफल होनेसे पहले राज्यमें भयानक भीतरी झगड़े हुए। इन झगड़ोंमें परवेजने अपने प्राणोंसे हाथ धोया।

भीमसिंहने जहांगीरका कहा नहीं माना, इसका कारण था। वे परवेजसे बहुत घृणा करते थे। परवेज सीसोदीय कुलका बड़ा भारी शत्रु था; राजपूतोंको कष्ट पहुंचाने और उनकी हानि करनेका वह सदा यत्न किया करता; विशेष कर पिछली लड़ाईमें उसने मेवाड़की बड़ी ही हानि की थी। भीमको कभी यह बात स्वीकार नहीं थी कि खुर्रमके रहते परवेज बादशाह हो; अतएव जिसमें कि वह बादशाहत न पा सके इसका वे उद्योग करने लगे। इसके बाद वे सुलतान खुर्रमसे सलाह करने लगे कि भविष्यमें क्या करना उचित है। सलाहसे निश्चय हुआ कि यदि खुर्रमको बादशाह होनेकी इच्छा हो तो उसे उचित है कि तनिक भी विलम्ब किये बिना वह खुलाखुली विरुद्धाचरण करके परवेजको मार डाले। खुर्रमने ऐसाही किया; अर्थात् देर न की। कुछ साथियोंको लेकर उसने परवेज पर चढ़ाई की। परवेज मारा गया। इसके बाद खुर्रम पिता के विरुद्ध खड़ा हुआ; बहुतसे राजपूत उसकी सहायता करनेको तैयार हुए। उनमें मारवाड़नरेश गजसिंह अधिक प्रसिद्ध हैं। सच तो यह है कि वेही इस कार्यमें प्रधान उत्साहदाता थे; परन्तु यह सोचकर कि कदाचित् जहांगीरको कुछ सन्देह हो उन्होंने दूरही दूर रहनेका निश्चय किया।

इस नई भड़की हुई विद्रोहकी आगको बुझानेके लिये जहांगीर स्वयं चला। इसका उसे पहले हीसे सन्देह था कि मारवाड़के राठौड़ गजसिंह गुप्त रूपसे बागियोंमें मिले हुए हैं। यद्यपि इस विषयमें उसे यथेष्ट प्रमाण नहीं मिला था कि गजसिंह वास्तवमें बागियोंमें मिले हुए हैं या उनपर केवल सन्देह ही सन्देह किया जाता है तौभी उनपर किसी कार्यका भार न डालकर उसने जयपुर-नरेशको सेनापति बनाया। अतएव गजसिंह अपनी ध्वजा समेटकर इस तरह अपने राज्यमें जाकर बैठे मानों इन लड़ाई झगड़ोंसे उनसे कुछ सम्बन्धही नहीं है। पर न्यायी तेजस्वी भीमसिंहको यह बात अच्छी नहीं मालूम हुई। इस विद्रोहके प्रथम और

प्रधान उत्तेजक गजसिंह ही थे; उन्हींका अब अलग हो जाना कैसे उचित कहा जा सकता है ? पहले तो भीमसिंहने कुछ न कहकर कुछ समयतक राह देखी, पर जब जहांगीर और खुर्रमके दलोंका सामना हुआ और इस समय भी गजसिंह नहीं आये तब भीमने उनसे कहलाया कि "आपका इस तरह अलग अलग रहना ठीक नहीं है। या तो आप खुले मैदान हमलोगोंमें आ मिलिये या हमारे विरुद्ध लड़िये।" यह संदेसा पाकर गजसिंहको बहुत दुःख हुआ और अपनी सेना ले कर वे खुलाखुली भीमके विरुद्ध जहांगीरके पक्षमें खड़े हुए। सीसोदीय वीर भीम को इससे तनिक भी भय नहीं हुआ, बल्कि दूने उत्साहसे वे लड़े; परन्तु उनकी सेना छिन्नभिन्न हो गई और वे लड़ते लड़ते मारे गये †। तब कुछ उपाय न देखकर खुर्रम अपने सेनापति महाबतखांके साथ उदयपुर भाग गया।

† शक्तावत सरदार मानसिंह और उनके भाई गोकुलदास भीमसिंहके सलाह-कार थे। उन्होंने महाबतखांसे मिलकर जहांगीरके विरुद्ध यह चाल चली थी। खैरारके अन्तर्गत सांवर मानसिंहके अधिकारमें था। मानसिंह वीर पुरुष थे। राणा अमरसिंहके युद्धके समय उन्होंने ऐसी वीरता दिखाई थी कि तभीसे वे "सी-"सोदीय कुलके महान् पहलवान" कहे जाने लगे थे। उनके शरीरमें शस्त्रोंकी चोटोंके प्रायः ८० चिन्ह थे। एक एक लड़ाईमें उनका एक एक अङ्ग पिस जाता था तोभी वे लड़ाईके मैदानसे न हटते थे। भीममें और उनमें बड़ी मित्रता थी। दोनोंमें इतना सच्चा प्रेम था कि एक दूसरेको तनिक भी दुःखमें नहीं देख सकता था। लड़ाईमें भीमके वीरगतिके जानेकी खबर किसीने मानसिंहके कानोंतक न पहुंचाई और न उनको स्वयं यह दुःखदायिनी बात मालूम हो सकी; कारण यह कि उस समय वे चारपाई पर घायल पड़े थे, उनके समस्त अंग घायल थे और घावों पर पट्टियां चढ़ी हुई थीं; शरीरसे बहुत खून निकल जानेके कारण वे अत्यन्त निर्बल हो रहे थे। कहा जाता है कि वे भीमसिंहके साथ बैठकर भोजन किया करते थे; परन्तु भीमके मारे जानेके बाद जब रसोइया भोजन लेकर उनके सामने गया और भीमको उन्होंने नहीं देखा तो उनको बड़ा सन्देह हुआ। इस विषयमें उन्होंने उस ब्राह्मण रसोइयेसे प्रश्न किया। उसने सच्ची बात छिपाई; पर उसे कुछ आगा पीछा करते देखकर मानसिंहका सन्देह और भी दृढ़ हो गया।

उदयपुरमें खुर्रम शान्त चित्तसे कुछ दिनोंतक रहा। राणाजीने उसके रहनेके लिये विशाल राजभवनका एक भाग नियत कर दिया। वहीं खुर्रम स्वतन्त्र भाव से अपने साथियोंके सहित रहने लगा। पर उसके साथी राजपूती आचार विचारों को कम सम्मानकी दृष्टिसे देखने लगे जिससे बहुत लज्जित होकर उसने स्वयं राजभवन छोड़कर रहनेके लिये कोई दूसरा स्थान मिलनेकी प्रार्थना की। खुर्रमका ऐसा उदार भाव देखकर राणाजी उससे बहुत सन्तुष्ट हुए और पिशोला झीलके बीचमें टापूके ऊपर उन्होंने उसके लिये एक सुन्दर इमारत बनवा दी। यह इमारत शोभाकी बहुतसी चीजोंसे सजाई गई और उसकी चोटी पर इसलाम धर्मका अर्द्धचन्द्रयुक्त रंगबरंगा झण्डा खड़ा किया गया। उस इमारतके लम्बे चौड़े आंगन के बीच मदारशाह फकीरकी यादगारमें एक इबादतगाह बनी। पिशोला झीलके विमल जलसे चारों ओरसे घिरे हुए उस शोभनीय महलमें खुर्रम बहुत दिनोंतक अपने साथियोंके सहित रहा; पर क्षण भरके लिये भी उसका जलता हुआ हृदय ठण्डा नहीं हुआ। अनेक प्रकारकी चिन्ताओं और आशङ्काओंसे दुःखित होकर अन्तमें भारतवर्ष त्यागकर वह फारस चला गया *।

विधाताकी इच्छासे मेवाड़की स्वाधीनता मुगलोंके हाथ चली गई, परन्तु जीतनेवाला जीती हुई जातिके साथ जैसा बर्ताव करता है वैसा बर्ताव जहांगीर या उसके पुत्र खुर्रमने राणाजीके साथ नहीं किया। खुर्रम कर्णको खास भाईकी तरह मानता। दोनोंका बन्धुत्व उनके जीवन भर बना रहा। खुर्रमके मेवाड़ छोड़कर चले जानेसे कर्णको बहुत दुःख हुआ। उन्होंने आशा की थी कि इसी टापूके

दांत पीसकर उन्होंने इतना जोर किया कि सब पट्टियोंके बन्धन टूट गये और उसी समय उनका प्राणान्त हो गया।

मानसिंहके छोटे भाई गोकुलदास भी एक प्रसिद्ध वीर थे। भट्टकवियोंने राणा कर्णके शान्तिमय राजत्वका वर्णन करते हुए लिखा है कि "कर्णके यशकी माला धीरे धीरे सूखती जाती थी; परन्तु गोकुलने अपने खूनसे सींचकर उसे फिर ताजा कर दिया।"

* अन्यान्य इतिहासलेखकोंने लिखा है कि वह गोलकुण्डा (दक्षिण भारत में) गया।

संवत् १६८४ वैक्रमीय (सन् १६२८ ई०) में प्रिय पुत्र जगत्सिंहको राज्यपद सौंपकर राणा कर्ण स्वर्गवासी हुए। आठ वर्षों तक उन्होंने राज्य किया।—ये आठ वर्ष बड़ी शान्तिके साथ बीते। उनके स्वर्गगमनके कुछ दिन बाद जहांगीर बादशाहका भी परलोकवास हुआ। उस समय शाहजादा खुर्रम सौराष्ट्रमें था। जगत्सिंहने तुरन्त कुछ सैनिकोंके साथ यह खबर लेकर अपने छोटे भाईको खुर्रमके पास भेजा। खुर्रम सब समाचार सुनकर उदयपुरमें आया और राणा जगत्सिंहसे मिला §। उस दिन उदयपुरका राजमहल ऐसी सुन्दरतासे सुशोभित किया गया था कि केवल उसकी शोभा देखनेके लिये राजस्थानके अनेक स्थानोंके लोग गये थे। "बादल महल" नामक उदयपुरके उसी सुशोभित राजमहलमें उस दिन देहलीके समस्त सामन्तों और कर देनेवाले राजाओंने पहले पहल सुलतान खुर्रमको "शाहजहां" नामसे सम्मानित किया। वह दिन मङ्गलका था;—सो उस मंगलमय दिनको उदयपुरके घर घर आनन्द मङ्गल होने लगा। और किसी मुसलमान अधिकारीके गद्दीपर बैठनेके समय हिन्दू इतने आनन्दित नहीं हुए थे। इसके कुछ समय बाद शाहजहां उदयपुरसे चला गया। उदयपुर छोड़नेसे पहले वह जगत्सिंहके अधिकारमें ५ प्राचीन जिले करता और उनको एक बहुत अधिक मूल्यका लाल देता गया। जानेसे पहले वह राणा जगत्सिंहसे यह भी कहता गया कि वे चित्तौड़के दुर्ग और दीवारोंको फिरसे बनवाकर मजबूत कर लें।

राणा जगत्सिंहने २६ वर्षों तक राज्य किया। ये २६ वर्ष शान्तिके साथ बीते। इतने लम्बे समयमें उनको कभी अशान्ति या उपद्रवका सामना करना नहीं पड़ा। पर भट्टकवियोंके किसी काव्यग्रन्थमें इनके राजत्वका पूरा पूरा हाल नहीं मिलता। बात यह है कि मेवाड़के भाट चारण वीररसप्रेमी होते हैं;—वीररसका वर्णन

णित कहते हैं! विशेष दु:ख तो इस बातका है कि बहुतसे हमारेही ज्ञानगवित हिन्दुस्थानी भाई अपने पूर्वजोंको असभ्य कहनेमें लज्जित नहीं होते हैं!

§ इतिहास "फरिश्ता" में इस बातका जिक्रही नहीं है। "फरिश्ता" ने लिखा है कि वहांसे खुर्रम अजमेर चला गया। परन्तु इस विषयमें भट्टकवियोंने जो वृत्तान्त लिखा है वह ठीक जान पड़ता है। उन्होंने लिखा है कि महाबत, अब्दुल्ला, खांजहां और उसका कार्याध्यक्ष शादुल्ला राजछत्रादि लेकर उदयेपुर गये थे।

भवनमें वे उसको सबके सामने बादशाह कहेंगे और बादशाहके दर्जे पर उसे अभिषिक्त करेंगे; पर उनको आशा सफल नहीं हुई। वे भी खुर्रमको भाईकी तरह मानते थे इस बातका प्रमाण अबतक विद्यमान है। खुर्रमने उनके साथ जो भलाई की थी उसका उन्होंने बहुत अच्छा बदला दिया। उनका बदला साधारण बदला नहीं था, बल्कि उसे हम स्वर्गीय कह सकते हैं। वह पवित्र हृदयको पवित्र कृतज्ञताका चिन्ह था,—अर्थात् शाहजादा खुर्रमकी पगड़ी। राणा कर्णने खुर्रमकी सच्ची मित्रतासे सन्तुष्ट होकर उसकी जो पगड़ी ली थी वह उस समय जैसी थी वैसी ही इस समय भी है। जिस महलके सुन्दर आंगनमें बैठकर उन्होंने भावी शाहजहां बादशाह (शाहजादा खुर्रम) से पगड़ी बदली थी † वह महल अनेक स्थानोंसे टूट गया है तौभी मदारशाहका मजार अभीतक साफ है; वह टूटा फूटा नहीं है। मेवाड़की इस वर्त्तमान गिरी हुई अवस्थामें भी सीसोदीय राजे उस मजारके प्रदीपमें एक दिन भी तेल डालना भूलकर उसे बुझने नहीं देते ‡।

† पगड़ी बदलना राजपूतोंमें धर्मभ्रातृत्वबन्धनका प्रधान लक्षण है।

‡ जो पगड़ी राणा कर्णने खुर्रमसे बदली थी वह अभीतक ज्योंकी त्यों विद्यमान है और मदारशाहकी समाधि पर भी अबतक रोशनी की जाती है। टाड साहबने पगड़ी और इस स्थानको स्वयं देखा था। वे कहते हैं—"जिस हितकारी मित्रकी सरल मैत्रीके बदलेमें कृतज्ञतापूर्वक राजपूतोंने अपने महलके अन्दर एक मुसलमान फकीरका मकबरा बनने दिया था उसीके वंशधर यद्यपि सीसोदियोंके साथ बड़ाही कठोर बर्ताव करते हैं तौभी सीसोदय उस पवित्र कृतज्ञताको भूलते नहीं हैं। पवित्र कृतज्ञताका ऐसा परिचय और कहीं नहीं मिलता। अहा! इनके हृदयमें कैसा सुहृद्भाव भरा है? हमलोगोंका हृदय अज्ञानरूपी अन्धकारसे ऐसा ढँका है कि हम इनकी दरिद्रता और इनके सदासे कष्ट पाये हुए व्यथित हृदयकी पवित्रताका अन्दाजा नहीं कर सकते।" पाठको! भारतबन्धु विद्दर टाड साहबके हृदयमें ऐसे पवित्र भावका उदय होना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है। वे भारतका माहात्म्य और गौरव समझ सके थे, इसीसे दुर्दशाग्रस्त राजपूतोंके लिये उनको दुःख हुआ। पर शोक कि जिस जातिको वे (टाड साहब) श्रेष्ठ कह गये उनके वर्त्तमान आत्माभिमानी भाई (अंगरेज) उसी जातिको असभ्य और छ-

करना उनको बहुत अच्छा मालूम होता है;—उनके काव्यका प्रधान विषय वही होता है जिससे हृदय उत्साहित उत्तेजित या स्तम्भित हो। वे जैसे वीररसप्रेमी होते हैं वैसीही निपुणता और सुन्दरतासे वीररसका वर्णन भी कर सकते हैं। राणा जगत्‌सिंहके शान्तिमय शासनसमयमें शिल्पकी पूरी उन्नति हुई; विशेषकर उन्होंने सुन्दर सुन्दर इमारतें बनवाईं। उदयपुरमें उनके नामसे प्रसिद्ध जो सुन्दर सुन्दर बड़ी बड़ी इमारतें देख पड़ती हैं वे सब उन्हींकी बनवाई हुई हैं। उनकी शोभा सुन्दरता और मनोहर बनावट देखकर मन बड़ा प्रसन्न होता है;—तुरन्त ही चित्तमें यह प्रश्न उठता है कि उन अत्यन्त कठोर विपत्तियों और भयानक उपद्रवोंके बादही जिनका हाल आगे लिखा जा चुका है क्योंकर ऐसी ऐसी इमारतें बन सकीं जिनमें बहुत रुपये खर्च हुए होंगे। ऐसे प्रश्नका उत्तर पहले बहुत बार दिया जा चुका है, अतएव यहां फिर इस विषयमें कुछ लिखनेकी आवश्यकता नहीं है; केवल इतनाही लिख देना बहुत होगा कि प्रजाके हितका ध्यान रखकर राज्यशासन करनेसे असंख्य विपत्तियोंका सामना रहते हुए भी राजा उन्नति कर और सुख पा सकता है।

राणा जगत्‌सिंहने जो महल बनवाये थे उनमें जगनिवास और जगमन्दिर अधिक प्रसिद्ध हैं। सुन्दर पिशोला झीलके बीचके टापूके ऊपर जगमन्दिर और उसके किनारे पर जगनिवास है। दोनों ही महल बहुत सुन्दर और शोभामयी सामग्रियोंसे सुशोभित हैं। ऊपरसे नीचेतक दोनों सङ्गमर्मरसे बने हैं। उनके अन्दरके स्तम्भ, स्नानागार, तालाब, बनावटी झरनें आदि सभी देखने योग्य चीजें मर्मर पत्थरकी बनी हैं। दोनों महलोंके द्वार और खिड़कियां रंग रंगके कांचसे सुशोभित हैं। जिस समय सूर्यकी उज्ज्वल किरणें उन खिड़कियोंसे छनकर अन्दरकी दीवारों पर पड़ती और असंख्य इन्द्रधनुषोंका अनुमान कराती हैं उस समय दोनों महलोंका रूप ऐसा सुन्दर हो जाता है कि जिसका वर्णन करना कठिन है। प्रत्येक विभागमें सुन्दर रंगबरंगी ऐतिहासिक चित्र बने हुए हैं। यद्यपि समयके हेरफेरसे अनेक प्रकारकी दूषित हवा लगनेसे उन चित्रोंका रंग कहीं तो बहुत गाढ़ा हो गया है और कहीं बहुत फीका, परन्तु तौभी उनको एकाएक देखकर उनके सजीव होनेका धोखा होता है। महाराज कनकसेनकी उत्पत्तिसे

लेकर मेवाड़के भूतपूर्व राणाके विवाहकी धूमधाम तक जितनी घटनाएँ हुईं उन सबके चित्र उक्त दोनों महलों तथा उदयपुरके प्रधान राजमहलकी दीवारों पर बने देख पड़ते हैं। दोनों महलोंके चारों ओर अनेक प्रकारके फल फूलोंके वृक्ष हैं। उन बहुतसे वृक्षोंसे एक बड़ा सुन्दर बाग बन गया है जिसमें स्थान स्थान पर अनेक कुञ्ज हैं। कहीं तो दस बारह नारियल और ताड़के पेड़ मानों आकाश छूनेके विचारसे एक दूसरेको डाहकी दृष्टिसे देखते हुए ऊँचा सिर किये खड़े हैं; कहीं नीबू नारङ्गी और इमलीके बड़े बड़े वृक्ष एक दूसरेसे सटे हुए भूमि पर छाया किये हुए हैं; और कहीं असंख्य केलों और सरोंके पेड़ दूर दूर तक फैले हुए हैं और उनसे अनेक कुञ्ज बने हुए हैं। उन कुञ्जोंके बीच लोगोंके बैठनेकी लकड़ीकी चौकियां हैं। पिशोलाके किनारे सरदारों और सामन्तोंके लिये अनेक घाट बने हैं। सङ्गमर्मरकी सीढ़ियोंसे घाट सुशोभित हैं। घाटोंके पासही आहारशालाएं और बाग हैं। बागोंमें अनेक तरहकी फूलों और छायाके पेड़ हैं। अतएव इन घाटोंको एक एक कुञ्जबाटिका कह सकते हैं। गर्मीके दिनोंमें दोपहरकी सूर्यकी तेजीसे बचनेके लिये अनेक सरदार इन कुञ्जबाटिकाओंमें आराम करनेको जाते थे और अफीम खा या फूलोंका रस पीकर पत्थरकी चट्टानों पर लेटे लेटे भाट चारणोंके मुखसे राजपूत वीरोंकी बड़ाई सुनते थे। झीलके जल और कमलके फूलोंसे अठखेलियां करके ठण्ढी हो गई हुई दोपहरकी तेज हवा कुञ्जोंके अन्दर रुक रुककर पहुंचकर उनको सुखी करती थी। उस ठण्ढी हवाका आराम लेते लेते और भाटोंके मुखसे वीररसकी कविता सुनते सुनते धीरे धीरे वे बिलकुल सो जाते थे। फिर जबतक सूर्यास्तका समय न होता था तबतक उनकी नींद नहीं टूटती थी सूरज डूबनेके समय कुसुमरस और अफीमके नशेकी खुमारी जब उतरती तब वे धीरे धीरे आंखें खोलते। आंखें खोलते ही उनको जो मनोहर दृश्य दिख ई देता उससे उनको स्वर्गसुख मिलता। सोकर जागतेही ऐसा हृदयविमोहक दृश्य दिखाई देना उनको स्वप्नसा जान पड़ता। वे जिधर दृष्टि डालते उधर ही उनको प्रकृतिकी प्यारी शोभा दिखाई देती। डूबते हुए सूर्यकी अन्तिम किरणें पिशोलाके किनारेके वृक्षों, सामने अरावली पर्वतकी चोटियों और उनके पांवोंके नीचे फैली हुई सफेद सीढ़ियोंकी सुन्दरता बढ़ती थी। पिशोलाके विमल जल

में इन दृश्योंकी छाया पड़नेसे और भी शोभा जान पड़ती थी। सरदार लोग यह शोभा बराबर उस समय तक देखते रहते और वहांसे न जाते जबतक यह दिखाई देती रहती। इससे उनके विचार बढ़ते और गिह्लोट वीरोंकी अनेक वीरताओंका ध्यान उनको होता। सूर्यास्त होतेही प्रकृतिका सौन्दर्य चला जाता; तब वे सन्ध्यावन्दनादि करके अपने अपने घर लौटते। अस्त्र शस्त्रोंकी झनझनाहट और वीरोंका गर्जन सुननेके बदले दो पीढ़ियोंतक ऐसी ही शान्ति और ऐसे ही आनंदमें सीसोदीय राजे और सरदार रहे।

राणा जगत्सिंह बड़े माननीय राजा थे। मुगलोंके निर्दय आचरणोंसे मेवाड़के हृदयमें जो गहरे घाव लगे थे और जिनके कारण मेवाड़के लोग बड़े हार्दिक कष्टसे मुगलोंके नाम याद करते थे राणा जगत्सिंहने अपने अच्छे शासनसे उन घावोंको चङ्गा कर दिया और मुगलोंकी यादसे मेवाड़वासियोंको जो कष्ट होता था उसे भी बहुत कुछ कम कर दिया। उनकी स्वाभाविक सुजनता, महत्ता, उदारता और सरलता देख तथा मीठी बातें सुनकर शत्रु भी मोहित होते थे। मुसलमान इतिहासलेखकोंने भी उनके इन गुणोंका वर्णन किया है। यहांतक कि जहांगीर स्वयं अपनी जीवनीमें और सर टामस रो अपने लेखमें उनकी खूब प्रशंसा कर गये हैं। गिह्लोट कुलके गौरव और स्वाधीनताकी भूमि जो चित्तौड़पुरी अबतक बुरी दशाको पहुंची हुई थी उसकी मरम्मत करा तथा उसे पुन: बनवाकर राणा जगत्सिंह उसे पहलेकी तरह सुन्दर बनानेमें बहुत कुछ कृतकार्य हुए। इसके सिवा उन्होंने मालबुर्ज *, मुख्य द्वार और छत्रकोट आदि टूटे फूटे स्थानोंकी भी अवस्था सुधारी।

राणा जगत्सिंहने मेवाड़की राजकन्यासे विवाह किया था; उसके गर्भसे उनके दो पुत्र हुए;—उन दोनोंमेंसे बड़े राजसिंहने उनके बाद मेवाड़की गद्दी पाई। राणा राजसिंहके गद्दी पर बैठने पर एकाएक मेवाड़की पूर्व अवस्था एकदम बदल गई। अबतक वहां जो शान्ति थी वह नहीं मालूम कहां चली गई। देखते देखते फिर घोर अशान्ति चारों ओर फैल गई; फिर जातीय जोश और बैर फला;

* चित्तौड़के तीसरी बार दुर्दशाग्रस्त होनेके समय अकबरने इस मालबुर्जको बारूदसे उड़ा दिया था।

हिन्दू मुसलमानोंके झगड़ेकी आग न केवल मेवाड़ बल्कि समग्र राजस्थानमें भड़की। यद्यपि वे झगड़े बहुतसे कारणोंसे पैदा हुए, परन्तु विशेष विचार करनेसे मालूम होता है कि मुख्य कारण राणा राजसिंह ही थे; क्योंकि उस अशान्तिके फैलानेमें उन्होंने सहायता की थी। यह वह समय था जब शाहजहां अपनी उमरके चौथेपनमें था और उसके बाद गद्दी पानेके लिये उसके दुष्ट पुत्र आपसमें खूबही लड़ रहे थे। पिताके जीवित रहते ही वे मुगल बादशाहत लेनेका प्रयत्न करने लगे। उस भीतरी विद्रोहके कारण साम्राज्यमें जो अशान्तिकी आग भड़की उसने समग्र भारतवर्षको झुलस डाला और अनेक अभागे उसमें जल भुन गये। अपना अपना मतलब निकालनेके लिये बादशाहके चारों दुष्ट पुत्र राजस्थानकी सभी राजाओंसे सहायता मांगने लगे। उस समय राणा राजसिंहसे शाहजहांके चारों पुत्रोंने † एकसाथ सहायता मांगी; पर राजसिंहने दाराको छोड़ किसीको सहायता पहुंचाना स्वीकार नहीं किया। दारा सबमें बड़ा था, अतएव उत्तराधिकारित्वकी सदासे प्रचलित प्रथाके अनुसार गद्दी पानेके योग्य वही था। इसी कारण राजसिंहके साथही साथ राजस्थानके सब राजाओंने उसका साथ दिया। परन्तु उनका उद्योग सफल नहीं हुआ। फतहाबादके मैदानमें औरङ्गजेबने दारा, शुजा, मुराद, सबको पराजित किया।

फतहाबादके मैदानमें लड़कर औरङ्गजेब विजयी हुआ; उसका भाग्यरूपी रास्ता साफ हो गया; उस रास्तेमें जो कांटे थे उनको उसने अपने हाथोंसे उखाड़ डालनेका निश्चय किया और ऐसा कर भी डाला! अपने भाइयों, कुटुम्बके लोगों, यहांतक कि अपने पुत्रोंके भी हृदयका खून बहानेसे वह चूका! अधिक क्या कहें, राज्यलोभमें पड़कर उसने जो शैतानी काम किया उसपर जरा विचार करनेसे हृदय कांप उठता है और इस संसारको नीचता स्वार्थपरता और विश्वासघातका घर कहनेकी इच्छा होती है। ऐसे भयङ्कर कार्य करते समय औरङ्गजेबने जरा भी नहीं सोचा कि वह संसारमें अमर होकर सदा सुख भोगनेके लिये नहीं आया है।

† शाहजहांके चार पुत्र थे। उनके नाम क्रमानुसार ये हैं,—(१) दाराशिकोह (२) सुलतान शुजा, (३) औरङ्गजेब और (४) मुरादबख्श।

था यदि वह तैमूरके * वीर वंशकी भविष्य अवस्था सोचता तो अवश्य समझ सकता कि अपने भविष्य वंशधरोंकी भलाईकी जड़ वह आप काट रहा है ।

तैमूरके वीर वंशधर बाबरने जिस राज्यरक्षिणी नीतिसे अपना राज्य चलाया, कठोरहृदय औरङ्गजेब यदि उस नीतिका अनुसरण करता और अपने वंशधरोंको उसी नीति पर चलनेकी शिक्षा दे जाता तो मुगल-साम्राज्य इतनी जल्दी नष्ट न हो जाता और प्रजाप्रिय शाहजहांका शोभामय तख्तताऊस (मयूरासन) देहलीमें अब तक विराजमान होता । पर दुष्ट औरङ्गजेबने मोहमें पड़कर अपने पांवोंमें आप कुल्हाड़ी मारी। उसीकी दुष्टतासे सम्पूर्ण मुगलकुलकी दुर्दशा हुई और अन्त समय उसे अपना जीवन भारी जान पड़ने लगा । बुद्धिमान् अकबर अपने दादा (बाबर) की इस नीति पर पूरी तरह चला था, इसीसे अनेक विघ्नोंके रहते भी वह अपना राजासन अटल रख और पूर्व तथा पश्चिमके राज्याधिकारियोंमें सबसे अधिक नाम पा सका था । अपने पुत्र जहांगीरको भी उसने इस नीतिके लाभ समझा दिये थे और उसीका फल है कि जहांगीर शाहजहां जैसा पुत्ररत्न पा सका। शाहजहां योग्य पिताका योग्य पुत्र था । पितासे उसने जो शिक्षा पाई उसीके अनुसार कार्य किया । उस नीतिकी जड़में एक महान् नैतिक बल छिपा हुआ था यह बात आपसे आप समझमें आ सकती है; पर दुःखका विषय है कि इतिहासलेखकोंने इस नैतिक बलको विचारा नहीं, इसीसे उन्होंने अपने इतिहासोंमें इसका जिक्र नहीं किया। हिन्दू राजाओंसे सम्बन्ध करके मुगल बादशाहों ने यह महान् नैतिक बल प्राप्त किया था और उन्हींकी सहायतासे बड़ी बड़ी विपत्तियोंसे बचकर वे अपना राजत्व स्थिर रख सके थे । चतुर जहांगीर और न्यायी शाहजहांके राज्यसमयमें समग्र भारतवर्षमें जो शान्ति थी और हिन्दू राजे अपने राज्योंको जैसा उन्नत और पुष्ट कर सके थे दूसरे विदेशी अधिकारियोंके समय में वे कभी अपने राज्योंको उतना उन्नत और पुष्ट नहीं कर सके थे । यह वीर बाबर हीकी नीति थी कि जहांगीर और शाहजहां हिन्दुओंसे स्नेह करते और सदा उनकी भलाई चाहते थे । जहांगीर आमेरकी राजकुमारीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था

* औरङ्गजेब आदि प्रसिद्ध तैमूरलङ्गके वंशधर थे । औरङ्गजेबका पिता शाहजहां बादशाह तैमूरकी दसवीं पीढ़ीमें उत्पन्न हुआ था ।

और शाहजहाँ मारवाड़की राजकुमारीके गर्भसे । वे हिन्दुओंकी भलाई चाहते, अतएव हिन्दू भी उनको चाहते । पर जिस दिन बाबरकी नीतिमें अन्तर पड़ा, जिस दिन हिन्दू मुसलमानोंका बैर उभरा, उस दिन दोनोंकी सहानुभूतिका बन्धन टूट गया और वे एक दूसरेके भयङ्कर शत्रु हो गये । इसका बड़ा भारी उदाहरण हिन्दूविद्वेषी कठोरहृदय औरंगजेब है। औरंगजेब एक तातारी औरत से पैदा था; उसे हिन्दुओंसे सहानुभूति नहीं थी; वह राजपूतोंकी उन्नति नहीं चाहता था। भाइयोंकी हत्या, पिताको कैद और पुत्रोंका नाश करके साम्राज्य का अधिकार पानेका उद्योग करनेमें किसी राजपूतने उसकी सहायता नहीं की। सहायता करना तो दूर था,—उसका असत् उद्देश्य व्यर्थ करनेके लिये रजवाड़ेके सभी राजे उसके विरुद्ध लड़ाईके मैदानमें खड़े हुए थे। इसका कारण क्या था?—इसका कारण था बाबरकी नीतिका † अभाव। औरंगजेब स्वयं इस बड़े अभाव को समझ और जान सका था कि इस नीतिके अनुसार न चलनेसे ही उसका राज्य अनर्थका घर हो गया। इसीसे अन्तमें वह इस नीति पर चला। उसी नीतिके फलस्वरूप उसके पुत्र शाह आलम और अजीम थे और उसका पुत्र कामबख्श था। परन्तु उसकी कठोरता, अत्याचारप्रियता और उसके हिन्दूविद्वेषके कारणही मुगलसाम्राज्य अन्तमें नष्ट भ्रष्ट हुआ।

पिताके राज्य पर अधिकार करनेके लिये शाहजहांके चारों पुत्रोंने समग्र भारतवर्षमें जो भयानक आग भड़का दी उसका वृत्तान्त मेवाड़के इतिहासमें पूरी तरह लिखनेके योग्य नहीं है; इसीसे टाड साहबने अपने इतिहासमें उसे नहीं लिखा और हमने भी न लिखना ही उचित समझा। इतिहास जाननेवाले पाठक वह वृत्तान्त अच्छी तरह जानते ही होंगे । स्वार्थी कठोरहृदय औरङ्गजेबने स्वयं भारतका साम्राज्य पानेके लिये अपने दारा शुजा और मुराद तीनों भाइयोंकी हत्या कर डाली थी यह सभी जानते हैं, अतएव इस जगह इस विषयमें सविस्तर

† यद्यपि इस कारण कि यह नीति भी दूसरे प्रकारसे हिन्दुओंके लिये हानिकारिणी थी हम इसे अच्छा नहीं कह सकते, तथापि वह मुगल बादशाहोंके लिये लाभकी थी और औरंगजेबकी कठोर नीतिसे अच्छी थी।

वृत्तान्त लिखना अनावश्यक समझकर हम असल विषयके लिखनेकी ओर ध्यान देते हैं *।

औरङ्गजेब बादशाहके समयमें एक ही कालमें अनेक प्रसिद्ध राजे भारतवर्षमें थे। उनको भारतके इतिहासका एक एक नवीन चित्र कह सकते हैं । दूसरे किसी समय इतने चित्र एकत्र नहीं देख पड़े थे। उस समय प्रत्येक राज्यका अधिकार एक एक वीर और साहसी राजपूतको था। आमेरमें जयसिंह थे; मारवाड़में यशोवन्तसिंह थे जिनके अधीन बूंदी और कोटाके हाड़ा राजे थे; बीकानेरके राठौड़ थे और ओरछा तथा दतियामें बुन्देले । ये सभी बड़े बड़े वीर पुरुष थे। यदि अपने बलके अभिमानमें डूबा हुआ औरङ्गजेब अपने पूर्वजोंकी नीति पर चलता, यदि वह भला बुरा और आगापीछा सोचकर राजपूतोंसे मिलकर उनकी सलाहके अनुसार कार्य करता, तो मुगलोंका राज्य इतनी जल्दी बिलट न जाता। केवल उसके अभिमानने उसे नष्ट किया। घोर अभिमान और अहङ्कारमें पड़कर उसने अपने पांवोंमें आप कुल्हाड़ी मारी, अपने सुखके मार्गमें आप कांटे बिखेरे। जिन राजपूतोंकी कृपा और सहायता पानेके लिये उसके बड़े बड़े माननीय पूर्वज सदा उद्योग किया करते थे, जिनको सन्तोष पहुँचाना और प्रसन्न करना वे अपना मुख्य कर्त्तव्य समझते थे, आज औरङ्गजेब उन्हीं राजपूतोंके सुन्दर गुणोंको भूलकर अत्यन्त नीच लोगोंकी तरह उनसे घृणा करने और उनको कष्ट पहुंचाने लगा! अपने अनुचित व्यवहारोंसे उसने अपनीही खराबी की। इसी कारण समय हिन्दूसमाज उसे लाल लाल आंखोंसे देखने लगा और सब हिन्दू इच्छा करने लगे कि उसकी हानि हो। इसी हिन्दूविद्वेषी कठोरहृदय औरङ्गजेबके उपद्रवोंसे दुःखित भारतवासियोंका उद्धार करनेके लिये वीरवर शिवाजी मानों मुगलसूर्यके राहु बनकर जगत्में प्रकट हुए और अपूर्व बुद्धिमानी तथा कौशलसे ब-

* किन चतुराइयों और रीतियोंसे औरङ्गजेब अपने भाइयों पर विजयी हुआ इसका पूरा हाल बर्नियर साहब जो उस समय भारतवर्षमें मुगलदरबारमें थे बहुत उत्तम ढङ्गसे लिख गये हैं । उनकी पुस्तकका अनुवाद हमने हिन्दीमें किया है जिसका नाम "बर्नियरकी भारतयात्रा" है। यह पुस्तक भारतजीवन प्रेससे पाठकोंको मिल सकती है।

हुत थोड़े समयमें उन्होंने दुष्ट औरङ्गजेबको उसकी कठोरताका उचित फल चखा दिया।

जिन मुसलमान अधिकारियोंने भारतमें राज्य किया उनमें कपटता, स्वार्थ-परता, वीरता और विद्वत्तामें ॐ कोई औरंगजेबकी बराबरी नहीं कर सकता। उसका कुटिल हृदय इन गुणों और दोषों दोनोंसे भरा था। जिस विद्वत्ता या

ॐ यद्यपि औरंगजेब कठोरहृदय था पर वह विद्वान् अवश्य था। इसका प्रमाण उसके उस पत्रसे मिलता है जो उसने अपने लड़कपनके शिक्षक "मुल्लां" के नाम (जिसने उससे कुछ पानेकी आशा करके उसके पास एक पत्र भेजा था) लिखा था। उस पत्रका अनुवाद बर्नियर साहबने अपनी भ्रमणपुस्तकमें सन् १६८४ ई० में प्रकाशित किया था। टाड साहबने बर्नियर साहबकी पुस्तकसे वह पत्र अपने ग्रन्थमें टिप्पणीकी रीति पर पूरा पूरा उद्धृत किया है। अतएव हम भी उसे निज अनुवादित "बर्नियरकी भारतयात्रा" पुस्तकसे ज्योंका त्यों उद्धृत किये देते हैं। (उक्त मुल्लाका नाम मुल्ला सालह था),—

"मुल्लाजी! बराहे मेहरबानी यह तो फरमाइये कि आप मुझसे चाहते क्या हैं? क्या आपको यह दावा है कि मैं आपको दरबारके औवल दर्जेके उमरामें दाखिल कर लूं? अगर आपकी यही ख्वाहिश है तो पहले इस बातका साबित करना जरूरी है कि आप किसी निशानेइज्जतके मुस्तहक भी हैं या नहीं। मैं इससे इनकार नहीं करता कि अगर आप मेरी तालीम व तरबियत शाइस्ता तौर पर करते तो जरूर ऐसी ही इज्जतके मुस्तहक होते। आप मुझको किसी तरबियतयाफ़्ता नौजवान शख्सका नाम बतलाइये ताकि मैं आपको बतलाऊं कि उसकी तालीम व तरबियतकी बाबत शुक्रगुजारीका ज्यादा मुस्तहक उसका उस्ताद है या उसका बाप। फरमाइये तो सही कि आपकी तालीमसे कौनसी वाकफीयत मुझे हासिल हुई है? क्योंकि आपने तो मुझको यह बतलाया था कि तमाम फिरङ्गिस्तान (युरोप) एक छोटे जजीरेसे ज्यादा नहीं है जिसमें सबसे बड़ा बादशाह औवल शाह पुर्त्तगाल था, फिर बादशाह हालैण्ड हुआ और उसके बाद शाह इङ्गलिस्तान। फिरंगिस्तानके और बादशाहों मसलन फ्रान्स और अण्डलसकी बाबत आप यह बतलाया करते थे कि ये लोग हमारे यहांके छोटे

वीरताकी सहायतासे दुःखितोंको दुःख दूर किया जा सकता है, दूसरोंके साथ भलाई की जा सकती है, दुष्ट औरंगजेबने उसी विद्वत्ता और वीरताका व्यवहार अपना बुरा मतलब साधनेमें किया। वह किसीका विश्वास न करता; अत्यन्त प्रिय मित्रको भी वह अपनी गूढ़ बातें न बतलाता। परन्तु उसकी बुरी इच्छा या पाप-

छोटे राजाओंके मुआफिक हैं, और यह कि हिन्दुस्तानके बादशाहोंमें सिर्फ हुमायूं अकबर जहांगीर और शाहजहां ही ऐसे शाहंशाह हुए हैं जिनके आगे तमाम दुनियाके बादशाहोंकी शान व शौकत मद्धिम है, और यह कि ईरान उजबक काशगर तातार सयाम चीन और माचीनके बादशाह सलातीन हिन्दके नाम से कांपते हैं। सुबहान अल्लाह! आपकी इस जुगराफियादानी और कमाल इल्मतारीखका क्या कहना है! क्या मुझ जैसे शख्सके उस्तादको लाजिम न था कि दुनियाकी हरएक कौमके हालातसे मुझे मुत्तिला करता? मसलन उनकी कूवतजंगीसे, उनके वसायल आमदनी और तर्जजंगसे, उनके रस्मोरिवाज मजाहिब और तर्ज-हुक्मरानी और उन खास खास उमूरसे बातफसील और जुदा जुदा मुझको आगाह करता जिनको वे अपने हकमें ज्यादा मुफीद समझते हैं? मेरे जैसे शख्सके उस्तादको लाजिम था कि वह मुझको इल्मतारीख इस तरह सिलसिलेवार पढ़ाता कि मैं हरएक सल्तनतकी जड़ बुनियाद, अस्बाब-तरक्की व तनज्जुली और उनके साथ साथ उन वाकयात और गलतियोंसे वाकिफ हो जाता जिनके बायससे उनमें ऐसे ऐसे इनकलाबात होते रहे हैं। बनिस्बत इसके कि आप मुझको दुनियाकी कामिल तारीखसे आगाह करते, आपने तो हमारे उन मशहूर व मारूफ बुजुर्गोंके नाम भी अच्छी तरह नहीं बतलाये जो हमारी सल्तनत के बानी थे। उनकी सवानेउमरी, खास तौरकी लियाकतें जिनके बायस वे बड़ी बड़ी फतूहात करनेके काबिल हुए और उन फतूहातसे पहले जो वाकयात जहूर में आये उनसे भी आपने मुझे नावाफिक रखा। बावजूद कि बादशाहको अपनी हमसाया कौमोंकी जबानोंसे वाकिफ होना जरूरी है मगर बजाय उनके आपने मुझे अरबी पढ़ना लिखना सिखाया। इस जबानके सीखनेमें मेरी उम्रका एक बड़ा हिस्सा जाया हुआ; मगर आपने तो यह समझा कि एक ऐसी जबान सिखाकर जो बगैर दस बारह बरस मिहनत किये हासिल नहीं हो सकती

प्रवृत्ति सबसे अधिक बढ़ गई थी । उसने जो असंख्य भयङ्कर पाप किये उनका ध्यान करनेसे भी शरीर कांपता है। यदि वह समझ बूझकर अपनी असीम शक्ति को काममें लाता, तो अवश्य सर्वश्रेष्ठ शासक कहलाता। पर उसने ऐसा नहीं किया जिसका फल अन्तमें उसीके लिये बुरा हुआ।

गोया मुझपर बड़ा भारी एहसान किया । आपको यह सोचना था कि एक शाहजादेको ज्यादातर किन किन इल्मोंके पढ़ानेकी जरूरत है; मगर आपने मुझे ऐसे फनोंकी तालीम दी जो काजियोंके लिये मुफीद हैं और मेरी जवानीके दिन बेफायदा बर्कोंकीसी पढ़ाईमें बर्बाद किये। क्या आपको मालूम न था कि लड़कपनमें जब कूवत-हाफजा मजबूत होती है हजारों माकूल बातें जेहन-नशीन हो सकती हैं और आसानीके साथ इन्सान ऐसी मुफीद तालीम हासिल कर सकता है जिससे दिलमें निहायत आला खयालात पैदा हो जाते हैं और वह बड़े बड़े नुमायां काम करनेके काबिल हो जाता है? (अधिक विस्तारके भयसे हम यहां कुछ कम कर देते हैं)—अगर आप मुझे वे बातें सिखाते जिनसे जेहन इस काबिल हो जाता कि बगैर सही दलीलके किसी बातको तसलीम न करता, या आप मुझको वह सबक पढ़ाते जिससे इन्सानकी तबीयत ऐसी हो जाती है कि दुनियाके इनकलाबातका उसपर कुछ भी असर नहीं होता और तरक्की या तनज्जुलीकी हालतमें वह एकहीसा रहते है, या मुझे कुदरती बातोंसे आगाह करते………तो मैं उससे भी ज्यादा आपका एहसान मानता जितना सिकन्दरने अरस्तूका माना था और अरस्तूसे भी ज्यादा आपको इनाम अता करता। मुल्ला जी! नाकदरदानीका झूठा इलजाम ख्वाहमख्वाह मुझपर न लगाइये। क्या आप यह नहीं जानते थे कि शाहजादोंको इतनी बात तो जरूर ही सिखाना चाहिये कि उनको रिआयासे और रिआयाको उनके साथ किस तरहका बर्ताव करना लाजिम है? और क्या आपको अव्वल ही यह खयाल कर लेना लाजिम न था कि मैं किसी वक्त तख्तो ताजकी खातिर बल्कि अपनी जान बचानेके लिये तलवार पकड़कर अपने भाइयोंसे लड़नेको मजबूर होऊँगा।……पस क्या आपने कभी लड़ाईका फन, या किसी शहरका मुहासरा करना, या फौजकी सफआराई का तरीका मुझे सिखाया था? यह मेरी खुशकिस्मती थी कि मैंने इन मुआमि-

अपने भाईबन्दों और कुटुम्बके लोगोंका नाश कर दुष्ट औरंगजेबने आशा की थी कि सदा बड़ी निश्चिन्ततासे वह राज्यकार्य कर सकेगा ; पर उसकी आशा निष्फल हो गई । उसने सोचा था कि "निश्चिन्त रहूंगा;" पर ऐसा होना तो उसके अधीन नहीं था ? यदि वह अपनी इच्छाको अपने वशमें रख सकता, तो क्यों बुराईके समुद्रमें गोते लगाता ?—क्यों मनुष्य होकर जानवरोंकासा आचरण करता ? यही आश्चर्य है कि पिता, भाइयों और पुत्रोंकी हत्याके पापके बोझसे सिर झुका रहने पर भी वह निश्चिन्त रहना चाहता था ! हजार बार इच्छा और प्रतिज्ञा करने पर भी वह निश्चिन्त न हो सका । रह रहकर उसे ऐसी चिन्ताएँ होतीं कि वह तिलमिला जाता । उसके हृदयकी शान्ति न मालूम कहां चली जाती । एक तो वह पहले होसे किसीका विश्वास नहीं करता था, तिसपर उसे चिन्ताओंने आ घेरा, जिनसे क्षण क्षणमें उसे तरह तरहकी शङ्का होती और अनेक बातोंका सन्देह होता । मानों सारा संसार उससे शत्रुता करनेको तैयार था; मित्र, हितैषी, सभासद, मन्त्री सब एक साथ मिलकर उसकी विरुद्ध चालें चलते थे ! उसकी ये चिन्ताएँ जैसे जैसे बढ़ती गईं वैसे ही वैसे वह अधिकाधिक अधीर होता गया । पर चतुर औरंगजेब समझ गया कि इस अवस्थामें जीवन बिताना किसी कामका नहीं; अतएव वह चित्तको शान्त करनेके उपाय ढूंढ़ने लगा। बहुत विचारके बाद उसने निश्चय किया कि अपनी जातिके लोगोंको किसी प्रकार सन्तुष्ट रखनेसे वह निश्चिन्ततासे राज्य भोग सकेगा और सब विघ्न दूर होंगे !

दुष्ट औरङ्गजेबके मनमें जिस समय यह विचार उत्पन्न हुआ उसी समय उसकी भविष्य हानिने जड़ पकड़ी। तब भी वह न समझा कि अपनी हानि आप कर रहा है। वह उस समय ऐसे मोहमें पड़ा कि उसकी भलाई बुराई समझनेकी शक्ति एकदम नष्ट हो गई । उसके विचारकी बातें लिखते कलेजा कांपता और लेखनी रुकती है ! उस नासमझ दुष्टने निश्चय किया कि अबतक अपने भाइबन्दोंको मारकर उसने जो हाथ कलङ्कित और गन्दा किया है उसे गरीब

लातमें ऐसे लोगोंसे कुछ सीख लिया था जो आपसे ज्यादा अक्लमन्द थे। पस, अपने गांवको चले जाइये और अबसे कोई न जाने कि आप कौन हैं और आपका क्या हाल है।"

हिन्दू प्रजाका रक्त गिराकर साफ करे। उसने सोचा कि ऐसा करनेसे मुसलमान प्रसन्न होंगे और सब दुश्चिन्ताओंसे छुटकारा मिलेगा। ज्योंही उसके मनमें ऐसा विचार आया त्योंही उसने अपने पास मित्रोंको बुलाकर यह कठोर आज्ञा दी कि "मेरी तमाम हिन्दू रिआयाको मुसलमान होना पड़ेगा। जिसे इनकार हो उसे जबर्दस्ती बल्कि अगर जरूरत हो तो तलवारके जरियेसे मुसलमान करो।" यह कठोरतम आज्ञा प्रचारित होतेही राज्य भरमें महा हाहाकार मच गया। निस्सहाय निरवलम्ब बेचारे हिन्दू सनातनधर्मकी रक्षाका दूसरा उपाय न देखकर भय और व्याकुलतामें इधर उधर भागने लगे। बहुतेरे राज्य छोड़कर दक्षिणकी ओर जाने लगे; बहुतोंने भागनेका सुभीता न पाकर अपने हाथों अपना गला काट डाला; कितनोंने आबरू बचानेके लिये पहले अपने स्त्री पुत्र आदि प्यारों को मारा फिर अपने प्राण दिये। राज्यमें घोर अराजकता और बेअमनी फैली;—सब ओरसे हाहाकारध्वनि, दुःखित प्रजाकी चिल्लाहट और निरुपाय निस्सहाय अभागोंकी रुलाई सुन पड़ने लगी। हिन्दुओंकी मानमर्यादा, रीति नीति, धार्मिकता और जातीयता नष्ट की जाने लगी। मानों भारतवर्षमें प्रलयका सामान हुआ चाहता था। कौन उस प्रलयकालके सर्वसंहारक ग्राससे अभागे हिन्दुओंकी रक्षा करता? कोई नहीं! जो रक्षक है वही यदि भक्षक हो जाय, जिसके ऊपर प्रजाकी आबरू और प्रजाका जातिधर्म्म निर्भर करता है वही यदि सजाति और विजाति दो प्रजाओंको दो आंखोंसे देखकर अपने भरोसे पड़ी हुई गरीब विजाति प्रजाको कष्ट पहुंचावे, तो बेचारी प्रजा कहां जाकर रहेगी और किसके आगे अपना दुखड़ा रोयेगी? राजाका कर्त्तव्य है कि वह सजाति और विजाति दोनों प्रजाओंको एक दृष्टिसे देखे। जो राजा इस कर्त्तव्यको न समझे वह राजा नामके योग्य नहीं है; राजसिंहासन उसके स्पर्शसे कलङ्कित होता है। जो राजासन पर बैठकर हित अहित न्याय अन्याय विचार नहीं सकता, क्रोध मोह दर्प गर्व अहङ्कार और आत्मभिमानमें पड़ जाता है वह राजा नहीं है; उसे प्रजाके सुखसूर्य्यका राहु कहना चाहिये। उसका राज्य शीघ्र नष्ट हो जाता है; परमेश्वरकी ओरसे उस अत्याचारीके पापके बोझसे झुके हुए मस्तक पर कठोर वज्रदण्ड गिरता है।

औरङ्गजेबके कठोर अत्याचारोंके कारण राज्यमें घोर अराजकता छा गई।

पीड़ित हिन्दुओंके भागने या आत्महत्या करलेनेसे नगर, कस्बे, गांव, हाट, बा-जार सब एक प्रकार उजाड़ हो गये। व्यापारियोंके न रहनेसे वाणिज्यके स्थानोंमें चोरों डाकुओं और लुटेरोंकी बस्ती हुई; दूकानदारोंके न रहनेसे बाजार सुनसान हो गये; खेतिहरोंके न रहनेसे हरे भरे खेत जङ्गल हो गये! इस अवस्थामें माल-गुजारी भी कम हो गई और खजाना प्रायः खाली हो गया। राज्यकर्मचारी कर न पहुंचा सके। सच ही है; भला वे कर लेते किससे? जिसके पास कर वसूल करने जाते वह यातो अधमरी अवस्थामें पड़ा होता या चोरों लुटेरोंके अत्याचार से घर खाली होते। इसके बाद रुपयेकी कमी पूरी करनेका उपाय न देखकर औरङ्गजेबने सब हिन्दुओं पर "जिजिया" (मुण्डकर) नामक टेक्स लगाया। अत्याचार पर अत्याचार हुआ! कोई स्थिर न कर सका कि किस उपायसे इस सङ्कटसे उद्धार होगा। सभी निराश, निरुत्साह और निश्चेष्ट होकर केवल हाहाकार मचाने लगे। उस हाहाकार पर भी औरङ्गजेबका पत्थर हृदय न पिघला;—हिन्दुओंकी दुर्दशा अपनी आंखोंसे देखकर भी उसे तनिक दया न आई! परन्तु आर्म साहब के इतिहाससे मालूम होता है कि जिस चिन्ता और आशङ्कासे छुटकारा पानेका भरोसा करके उसने ऐसे अत्याचारों पर कमर बांधी थी उनसे छुटकारा नहीं मिला, बल्कि उसकी चिन्ता और भी बढ़ गई। ज्यों ज्यों दिन बीतते गये त्यों त्यों उसकी चिन्ता और घबराहट भी बढ़ती गई। धीरे धीरे उसकी घबराहट और चिन्ता यहांतक बढ़ी कि वह किसी तरह स्थिर न रह सकता; सोते या जागते किसी समय उसे शान्ति न मिलती। रातके दूसरे पहरके अन्तमें भी जब सारा संसार सुखमें सोता है उसे चैन न आता। मानों रातके गहरे सन्नाटेमें उसके परि-वारवाले पिता, भाई और पुत्र, कड़ाई और तिरस्कारके साथ कहते—"फरेबी—दगाबाज! क्या हम सबको कत्ल कर तू अपनी चैनमें जिन्दगी बसर कर सकता है? देख, खुदाका गजब अभी तुझपर नाजुल हुआचाहता है।"—औरंगजेब चौंक पड़ता; पलंगसे उठकर सोनेके कमरेसे बाहर निकलना चाहता; पर उससे आगे न बढ़ा जाता; लौटकर वह फिर पलंग पर जा लेटता। जब उसके जीवनका अन्त निकट आ गया, यमराजका कठोर दण्ड उसके सिरके पास पहुंचा, तब वह चिन्ता और दुःखसे ऐसा पीड़ित हुआ कि शोक, दुःख, निराशा और घबराहटमें

प्राय: सहसा चिल्ला उठता कि—"यह क्या ! जिधर देखता हूं उधर ही पाक सूरतें नजर आती हैं ! और वे गुस्सेसे लाल लाल आंखें निकाले हुई हैं † !"

† मृत्युसे कुछ दिन पहले औरंगजेबने अपने दो पुत्रोंके नाम जो पत्र भेजे थे वे नीचे प्रकाशित किये जाते हैं। इनमें संसारकी अनित्यता साफ झलकाई गई है। शोक ! यदि औरंगजेब अत्याचार और अनीतिके मार्गमें न जाता तो उसमें इतनी बुद्धि विद्या थी कि संसारमें बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता। पत्रोंका आशय नीचे दिया जाता है,—

शाह अजीमके नाम।—"बेटा ! आशीर्वाद करता हूं; तन्दुरुस्त हो। मेरा जी रात दिन तुम्हारी तरफ लगा रहता है। बुढ़ापा आ गया है; दिन पर दिन कमजोरी आती और ताकत मेरा साथ छोड़ती जाती है। मैं अकेला अपरिचितों की तरह इस दुनियामें आया था और अकेला ही चला जाऊँगा। मैं कौन हूं, कहांसे आया, कहां जाऊँगा, इसको कुछ खबर नहीं। ममताकी धूमधाममें जो दिन बीत गये वे केवल कष्ट और दुःख पीछे छोड़ गये हैं। मैंने राज्यकी रक्षा नहीं की। अफसोस ! मेरे अमूल्य समयका कितना हिस्सा बर्बाद गया ! मुझमें बुद्धि और भला बुरा पहचाननेकी शक्ति थी; पर मैं बड़ा अभागा निकला ! इन अन्धी आंखोंसे मैं उस बुद्धि और शक्तिको न पहचान सका। जिन्दगीका कुछ भरोसा नहीं; यह कभी स्थायी नहीं होती। पिछली हवाका कुछ भी हिस्सा नहीं बचता और भविष्यके लिये कुछ आशा भी नहीं रहती। अब मुझे बुखार नहीं है; लेकिन शरीरके शोस हड्डीके सिवा मेरा कुछ नहीं है। मेरा पुत्र कामबख्श बीजापुरकी ओर गया है, पर अब भी वह बहुत पास है। बेटा ! तुम तो सबसे अधिक नजदीक हो। शाहआलम बहुत दूर पर है और मेरा पोता अजीम हुसैन खुदाके फजलसे हिन्दुस्थानके पास आ पहुंचा है। उसकी सेना और उसके साथी सब मेरीही तरह निस्सहाय और शङ्काकी दशामें हैं और मेरी ही तरह कष्ट भोग रहे हैं। वे अपने मालिकसे अलग हो गये हैं। यह भी नहीं मालूम कि उनका मालिक है या नहीं।

मैं दुनियामें कोई चीज अपने साथ नहीं लाया और मनुष्यकी कमजोरीके सिवा और कुछ न ले जाऊँगा। अपनी मुक्तिके विषयमें मुझे बड़ी शङ्का है कि

गद्दी पर बैठकर राणा लोग जिन अनेक नियमोंका पालन करते हैं उनमें "टीकादौड़" अधिक प्रसिद्ध है। बहुत दिनोंसे इस नियमका पालन नहीं हुआ, अतएव स्पष्ट प्रकट होता है कि राणाओंकी वीरप्रथाका एक प्रधान अंग इतने दिनोंतक बिगड़ा हुआ था। आज राणा राजसिंहने गद्दी पर बैठते ही इस नष्ट होती हुई प्रथाका पुनः प्रचार किया। अजमेरके पास ही मालपुर नामक एक

कैसे भयानक कष्टोंका मुझे सामना करना पड़ेगा। खुदाकी दया और कृपाका मुझे भरोसा है; पर क्या करूँ; जो पाप मैंने किये हैं उनपर जब विचार करता हूं तब शङ्का और भी बढ़ जाती है। पर केवल इतना ही नहीं होगा। मेरे चले जानेके बाद मेरी कुछ भी यादगार नहीं रहेगी। खैर, जो होना हो वह हो; मैं अपने शरीरकी किश्ती कालसमुद्रमें छोड़ चुका हूं। यद्यपि खुदा बचावेगा, परन्तु वर्त्तमान अवस्था पर विचार करनेसे मालूम होता है कि इस समय मेरे पुत्रोंके उद्योगकी बड़ी आवश्यकता है। मेरा अन्तिम आशीर्वाद मेरे पौत्र बेदारबख्तको दो। मैं उसे न देख सका; देखनेको जी चाहता है। उसकी लड़की बेगम दुःखमें पड़ी हुई मालूम होती है; पर कह नहीं सकता। खुदा ही आदमीके दिलका हाल जान सकता है। स्त्रियोंकी मूर्खतासे उत्पन्न हुई चिन्तासे केवल निराशा होती है। खैर, रुखसत रुखसत!"

शाहजादे कामबख्शके नाम।—"मेरे हृदयके सबसे अधिक निकट मेरे पुत्र! सबसे बड़ा मर्तबा पाकर परमेश्वरकी आज्ञाके अनुसार मैंने तुमको बहुतसी सलाहें दी थीं और तुम्हारे साथ अत्यन्त कठोर कष्ट भी उठाये थे; परन्तु तुमने मेरी सम्मतियों पर ध्यान नहीं दिया। इस समय मैं विदेशी और अपरिचितकी तरह इस संसारसे जाता हूं और अपनी तुच्छता समझकर आप ही शोकमें डूब रहा हूं। अपने पापोंका फल लेकर मैं संसारसे जाऊँगा। हाय! ईश्वरकी लीला कैसी विचित्र है! दुनियामें मैं अकेला आया और अकेले ही मुझे जाना पड़ेगा। इस महायात्रामें रास्ता दिखलानेवाला मुझे कोई नहीं मिलेगा, क्योंकि सब छोड़कर चले गये हैं। १२ दिनोंतक जो बुखार मुझे कष्ट पहुंचा रहा था वह भी छोड़कर चला गया। अब मैं जिधर दृष्टि डालता हूं उधर देवताओंके सिवा और कोई नहीं दिखाई देता। मैं सेना नौकर चाकर आदिकी अवस्था विचारकर शङ्कित

नगर है। राणा राजसिंहने इस वोरप्रथाका पालन करनेके लिये मालपुर पर आक्रमण किया और बड़ी वीरता दिखाई। शीघ्र ही यह खबर वृद्ध शाहजहांके कानोंतक पहुंची। उसके दरबारी इस वृत्तान्तके साथ बहुतसी बनावटी बातें मिलाकर उसके क्रोधकी आग भड़कानेकी चेष्टा करने लगे; परन्तु उदारहृदय शाहजहां बादशाहने हँसकर उत्तर दिया कि "मेरा भतीजा * बालक है, इसलिये उसने ऐसी नासमझी की।"

वीरश्रेष्ठ महाराणा प्रतापसिंहके साथही एक प्रकार मेवाड़की वीरता चली

होता हूं; पर हाय! मेरी क्या दशा होगी यह मैं नहीं जानता! कमजोरीके कारण मेरी कमर झुकी जाती है और पांवसे चला नहीं जाता है। दमा बढ़ा था; वह भी अब शान्त हो गया है। हाय! थोड़ी आशा भी नहीं है। मैंने असंख्य पाप किये हैं; नहीं मालूम क्या परिणाम होगा!......अजीमशाह इस समय पास ही है। देखना, कोई धार्म्मिक व्यक्ति न मारा जाय। यदि कोई मारा जायगा तो सारा पाप मेरे सिर लगेगा। मैं अब तुमको तुम्हारी मां और तुम्हारे बच्चोंको खुदाको सौंपकर जाता हूं। मृत्युकी कठोर यन्त्रणा धीरे धीरे मुझ पर आक्रमण कर रही है। बहादुरशाह जहां पहले था वहीं अब भी है। उसका पुत्र हिन्दुस्थानके पास आ पहुंचा है। बेदावख़ गुजरातमें है। हयातुन्निसा कैसी है; उसको नहीं देखा। तुम्हारी मांने मेरे साथ कष्ट भोगा और अब भी वह मेरा साथ देगी।

नौकर चाकर और दरबारी चाहे कैसे ही धोखेबाज क्यों न हों उनके साथ बुरा बर्ताव करना अनुचित है। अपना मतलब भलमन्सियत और कौशलसे निकालना चाहिये। सीमाके बाहर पांव न उठाना। **** मैं अब चला। पाप या पुण्य जो कुछ किया, केवल तुम्हारे लिये किया। इसके विपरीत न समझना। तुम्हारे साथ मैंने जो बुरे बर्ताव किये हैं उनको भूल जाना। देखना बेटा! फिर इसके लिये मुझे समझाना न पड़े। किसीने अपनी आत्माको शरीर त्यागकर जाते नहीं देखा; पर मैं देखता हूं;— वह देखो, मेरी आत्मा शरीर छोड़कर चली जाती है।"

* टाड साहबने लिखा है कि शाहजहां राणा राजसिंहके पिता कर्णको अपना धर्मभाई मानता था।

गई थी, परन्तु राणा राजसिंहके सिंहासन पर बैठनेके साथही वह फिर पलटी। सीसोदीय सरदार भी शान्ति छोड़ हाथोंमें तलवार लेकर खड़े हुए। फिर तलवारोंकी झनझनाहट और वीरोंके हुङ्कारसे मेवाड़भूमि रह रहकर कांपने लगी। राणा राजसिंह बप्पारावलके योग्य वंशधर और सीसोदीय कुलके योग्य वीर थे। वे जैसे वीर थे वैसेही तेजस्वी भी थे। भट्टग्रन्थोंमें अपने पूर्वजोंकी अद्भुत वीरताका वृत्तान्त पढ़कर बचपन ही में स्वदेश और सीसोदीय कुलका उद्धार करनेका उन्होंने निश्चय किया था। इस समय युवावस्थाके उत्साहमें वे उस सङ्कल्पके अनुसार साधन करनेका उपाय ढूंढ़ने लगे। हृदयमें प्रतिज्ञा और साहस होनेसे किसी सङ्कल्पके सिद्ध होनेमें देर नहीं लगती। राणा राजसिंहके हृदयमें प्रतिज्ञा भी थी और साहस भी था; अतएव बहुत शीघ्र उनको उनके सङ्कल्पके सिद्ध होनेका उपाय मिल गया। लड़कपनसे वे औरंगजेबसे घृणा करते और उसके नामको बहुत कोसा करते थे। अब उसी औरंगजेबको 'शाहंशाह हिन्द' बना हुआ देखकर उन्होंने उसके विरुद्ध तलवार पकड़नेकी प्रतिज्ञा की। इस प्रतिज्ञाके दिनके बादसे बहुत बार वे मुगलोंसे लड़े। उन लड़ाइयोंमें उनकी वीरता प्रकट होनेके साथ साथ सीसोदीयकुलकी पूर्व वीरता भी पुनः प्रकाशित हुई थी। औरङ्गजेबके बड़े सहायक थे और उसके अधीन असंख्य योद्धा थे, पर वह उन लड़ाइयोंमें अनेक बार पराजित हुआ था; बल्कि कई बार तो वह मारे जाते और कैद होते होते बच गया। कैदसे उसका बचना उसके बड़े भाग्यसे हुआ। जिस ढङ्गसे तेजस्वी राणा राजसिंह पहले पहल औरङ्गजेबसे लड़े थे उसका वृत्तान्त संक्षेपमें नीचे लिखा जाता है।

मारवाड़का राठौड़ कुल अनेक भागोंमें बँटा है; उनमेंसे एक भागके कुछ राजकुमार अपना प्राचीन राज्य छोड़कर रूपनगर नामक स्थानमें जा बसे। यह रूपनगर मुगल साम्राज्यके अन्तर्गत था; अतएव वे वहां मुगलोंकी अधीनतामें साधारण सरदारोंकी तरह रहने लगे। जिस समय औरङ्गजेब भारतका बादशाह था उस समय रूपनगरके राजाके भवनमें प्रभावती नामकी एक रूपवती बालिका दिन पर दिन बड़ी और अधिक सुन्दर होती जाती थी। थोड़े ही दिनोंमें उस अत्यन्त रूपवती बालिकाकी सुन्दरताका समाचार औरङ्गजेबके कानोंतक पहुंचा। सुननेके साथ ही उसे पानेके लिये उसकी लार टपक पड़ी; पर मतलब

निकलनेका कोई दूसरा उपाय न देखकर उसने उसके साथ विवाहका प्रस्ताव किया। औरंगजेब शाहंशाह था, अतएव उसने समझा कि प्रस्ताव सुनते ही प्रभावती विवाह करनेको राजी हो जायगी। पर उसकी आशा पूरी नहीं हुई; वरन् इस अनुचित प्रस्तावका शीघ्र उचित फल उसको मिला। प्रस्तावके साथ प्रभावतीके पिताके पास उसने रूपनगरको दो सहस्र सवार सैनिक भी भेजे थे; पर उसका सब आडम्बर व्यर्थ हुआ।

यथासमय औरंगजेबके भेजे हुए वे दोनों हजार सवार प्रभावतीके पिताके पास रूपनगर पहुंचे और अपने मालिक प्रस्ताव प्रकट किया। भयके मारे राजा का जी सूख गया; क्या करना चाहिये यह वह कुछ स्थिर न कर सका। धीरे धीरे यह बात प्रभावती तक पहुंची। उसने अपने पिताके पास जाकर इस विपत्तिसे छुटकारा पानेका उपाय करनेको कहा; परन्तु राठौड़ सरदार इतना घबरा गया था कि वह कोई उपाय सोच न सका। पिताको चुप देखकर प्रभावतीने स्वयं उचित उपाय करना विचारा। सबसे पहले उसने अपनी इस समयकी अवस्था पर बड़े ध्यानसे विचार किया। विचार करनेसे उसे जान पड़ा कि उसका कोई सहायक नहीं है; क्योंकि उसका पिता एक बहुत साधारण सरदार था। तो क्या वह सहायताके लिये मारवाड़नरेशसे प्रार्थना करती?—नहीं; यह कैसे हो सकता था? क्योंकि वे तो औरंगजेबके अधीन और एक प्रकार उसके वेतनभोगी थे। फिर ऐसी दशामें किससे सहायता मिलती? कौन तलवार पकड़कर औरंगजेबके विरुद्ध लड़ने जाता और उसे हराकर प्रभावतीकी रक्षा करता? कोई नहीं। तो क्या एक धार्म्मिका बालाका धर्म्म जबर्दस्ती बिगाड़ा जाता? औरंगजेबसे उसके धर्म्मके बचनेका क्या एक भी उपाय नहीं था?—हां, उपाय थे। क्या?—जहर, छुरी, आग और फांसी लगा लेना! ऐसा करनेमें किसी मनुष्यकी सहायताकी आवश्यकता नहीं थी। अन्तमें प्रभावतीने इन्हींमें कोई उपाय करनेका निश्चय किया। जिस समय वह ऐसा सोच रही थी उस समय उसके मनमें एक नया विचार उत्पन्न हुआ; मानों किसी देवताने आकर उसके कानोंमें कह दिया कि "घबरा मत। तुझे बचानेवाले मेवाड़के राणा राजसिंह हैं।" व्याकुल प्रभावतीको उसी समय धैर्य और विश्वास हो गया कि राणा राजसिंह ही उसे बचावेंगे।

प्रभावतो इससे पहले राणा राजसिंहके अनेक गुणोंकी बातें सुन चुकी थी। उसे विश्वास हो गया था कि राणाजो जैसे वीर हैं वैसे ही रसज्ञ भी हैं, खासकर स्त्रीजातिमें उनकी बहुत अनुराग है। राजसिंहके गुणोंपर विचार करते करते उसके हृदयमें उनके प्रति प्रेम उमड़ आया। आखिर अधिक विलम्ब न करके उसने राणाजीसे कहला भेजा कि "यदि आप इस सङ्कटसे बचावेंगे तो मैं अवश्य आपको अपना पति बनाऊँगी।" और किसी विश्वासी आदमीको न पाकर प्रभावतीने अपने मनका सब हाल अपने पुरोहितसे कहा और उससे वह पत्र राणाजी तक पहुंचा देनेकी प्रार्थना की। बालिकाका कर्त्तव्यपालन देखकर हितैषी पुरोहित तुरन्त प्रसन्नतापूर्वक मेवाड़की ओर चला और वहां पहुंचकर उसने इसकी चिट्ठी राणा राजसिंहको दी। आरम्भसे अन्ततक वह पत्र बड़े ही अच्छे भावोंसे भरा था; विशेषकर उस पत्रीका जो अंश सबसे अधिक सुन्दर था उसका मतलब हम यहां प्रकाशित करते हैं। अपने मनका सब हाल और घटनाकी समस्त बातें लिखकर अन्तमें प्रभावतीने उस पत्रीमें लिखा था—"महाराज! राजहंसीको क्या बगुलेका साथ देना पड़ेगा? या पवित्र राजपूतकुलकी कामिनी म्लेच्छकी दासी होगी? महाराज! मैं आपसे सच कहती हूं कि यदि आप इस सङ्कटसे मुझे न उबारेंगे—म्लेच्छसे मेरी मानमर्य्यादाकी रक्षा न करेंगे—तो मैं अवश्य आत्महत्या कर लूंगी।" यह जोशमें भर देनेवाला सुन्दर पत्र पढ़ते ही राणा राजसिंह घायल मृगकी तरह एकबार उछल पड़े; उनके शरीरमें मानों तीर लग गया; क्रोधसे उनका अङ्ग प्रत्यङ्ग कांप उठा। एक निस्सहाया राजपूत कुमारीके ऊपर मुसलमानके ऐसे अत्याचारकी खबर पाकर भला किस राजपूतके क्रोधकी आग भड़क न उठती? कौन न उसे बचानेके लिये अपने प्राण तक दे देनेको तैयार हो जाता? विशेषकर ऐसी अवस्थामें जब उस धार्म्मिका सुन्दरीने अपने बचावके लिये दुःखके साथ प्रार्थना की राणा राजसिंह उसकी प्रार्थना पूरी किये बिना कैसे रह सकते थे?

आगे कहा जा चुका है कि दुष्ट औरङ्गजेबको उसके अनुचित आचरणोंका उचित फल चखानेके लिये राणा राजसिंह अवसर ढूंढ़ रहे थे;—आज अवसर पाकर वे बहुत प्रसन्न हुए। उनका साहस और उत्साह दसगुना बढ़ गया। तु-

रम्भ उन्होंने अपनी सेना तैयार की। उनके पूर्वजोंके गौरवको शत्रु नष्ट कर चुके थे, पवित्र मेवाड़राज्य अपवित्र "जागीर" नामसे कलङ्कित हो चुका था, आज तेजस्वी राणा राजसिंह गिह्लोटकुलके खोये हुए गौरवका उद्धार करने चले। उनके सरदार और सैनिक उनका उत्साह तथा तेज देखकर स्वयं जोशमें भर गये और वीरवर बप्पारावलके झण्डेके नीचे नीचे लड़ाईके मैदानकी ओर चले। शस्त्रोंकी झंझनाहट और वीरोंकी गर्जनासे मेवाड़भूमि फिर सजीव हो गई। राणा राजसिंहने सबसे पहले प्रभावतीका उद्धार करना निश्चित किया। सब सरदारों और सैनिकोंको लेकर जल्दी जल्दी वे रूपनगरकी ओर बढ़े। यह नगर अरावली पर्वतमालाके नीचे दूरतक फैला हुआ था। वहां पहुंचकर इन्होंने मुगलसेना पर आक्रमण किया। बहुत देरतक दोनों दलोंमें लड़ाई होती रही। वीर राजपूतोंके आगे मुगल ठहर न सके, अतएव लड़ते लड़ते अन्तमें वे पराजित हुए। अधिकांश मारे गये; बहुत थोड़े प्राण बचाकर भाग सके। इस प्रकार औरङ्गजेबके दो हजार सवारोंको थोड़ेसे राजपूत वीरोंने पराजित किया। तब राणा राजसिंह प्रभावतीको पुरस्कारमें पाकर बड़े आनन्दके साथ अपने नगरको लौटे। उनकी इस वीरताके प्रकट होनेसे सारा राजपूताना उनसे बहुत प्रसन्न हुआ और उनको महाराणा प्रतापसिंहका योग्य वंशधर कहकर हजार मुखसे उनकी प्रशंसा करने लगा। यह औरङ्गजेब और राणा राजसिंहकी सेनाओंका प्रथम युद्ध था। इसमें सफलता देखकर मेवाड़के निवासियोंको बहुतसी बातोंकी आशा हो गई। राजभवनमें बड़ी धूमधामसे नियमानुसार नई रानीका स्वागत हुआ।

जिस समय राणा राजसिंहने प्रभावतीका उद्धार किया उसके कुछ दिन बाद राजस्थानमें जो बड़ी बड़ी घटनाएँ हुई थीं उनका साफ साफ वृत्तान्त किसी भट्ट-ग्रन्थमें नहीं मिलता; अतएव पहले तो कुछ सन्देह होता है कि वे घटनाएँ हुईं या नहीं परन्तु जब अनुसन्धान करनेसे उनके विषयमें बहुतसे प्रमाण मिलते हैं तब सन्देह दूर हो जाता है और सच्ची ऐतिहासिक बातें प्रकट हो जाती हैं। यह पहले लिखा जा चुका है कि औरङ्गजेब बड़ा भारी हिन्दूविद्वेषी था, और इस विद्वेषकी आग बुझानेके लिये उसने कितने ही पैशाचिक कर्म किये थे। पर उसका मतलब सिद्ध न होनेके दो बड़े कारण थे। प्रथम जयपुरके राजा जयसिंह

और द्वितीय मारवाड़के राजा यशोवन्तसिंह। यद्यपि जयसिंह और यशोवन्तसिंह औरङ्गजेबके अधीन थे पर उन्होंने क्षत्रियत्व नहीं त्यागा था। वे बड़े तेजस्वी थे;—औरङ्गजेब बहुत उद्योग करने पर भी उनको एकदम अपने वशमें न कर सका था। अपने बड़प्पनको देखकर उसने समझा था कि इन दोनों राजाओंको वशमें करके मैं अपने हाथकी कठपुतलियां बना लूंगा; पर उसकी आशा पूरी नहीं हुई। यदि औरङ्गजेब कोई अनुचित प्रस्ताव करता तो ये दोनों राजे उसका प्रतिवाद करते। उसने अनेक बार इच्छा की कि ये मारे जावें पर प्रकटमें कभी कुछ न कहा। वे हिन्दू थे; अपनी जाति और अपने देशसे उनको प्रेम था; फिर हिन्दुओं का दुःख कैसे देख सकते थे? इसमें सन्देह नहीं कि वे बादशाहके अधीन थे; परन्तु बड़े बलवान् और सहायसम्पन्न थे और बहुतसे मुगल सैनिक उनके दबावमें थे। ऐसी अवस्थामें औरंगजेबने सोचा कि यदि इनके सामने ही इनके सजातीय भाइयोंको कष्ट पहुंचाया जायगा तो सम्भव है कि ये विरुद्ध हो जायँगे; यह भी सम्भव है कि इनकी अधीनतामें जो मुगलसेना है वह इन्हींका साथ देगी; तिसपर यदि सब राजपूत इनके पक्षमें होकर लड़ेंगे तब तो और भी बुरा होगा। ऐसी बातें विचार कर औरंगजेब अपनी इच्छाके अनुसार कार्य न कर सका। अन्तमें बहुत सोच विचार कर उसने जो बात निश्चित की उसे याद करनेसे हृदय कांप उठता है! मारवाड़नरेश महाराज यशोवन्तसिंह उस समय काबुलमें थे और आमेरके अधिपति जयसिंह दक्षिणमें। दुष्ट औरङ्गजेबने इनकी हत्या करनेके लिये छिपे तौर पर दूत भेजे। हाय! दूतोंने जाकर दोनों विश्वस्त राजाओंको मार डाला! उनकी कृतज्ञता और मित्रताका औरंगजेबकी ओरसे यह फल मिला! उसने समझा था कि ऐसा करने पर उसका मतलब सिद्ध हो जायगा; परन्तु उसकी इच्छा पूरी नहीं हुई। स्वदेशप्रेमी वीर राणा राजसिंहने उसके विचार तोड़ दिये और उसको दुष्टताका उसे उचित फल चखाया।

किसी दुष्टके मनमें यदि कोई पाप इच्छा उत्पन्न हो और यदि वह उस इच्छाके अनुसार कार्य कर डाले तो उसकी पापप्रवृत्ति कम होनेके बदले और भी बढ़ जाती है। यही दशा औरङ्गजेबकी हुई। धोखेसे जयसिंह और यशोवन्तसिंहके प्राण लेकर उसे सन्तोष नहीं हुआ। अब उसने निरपराध यशोवन्तसिंहके

निस्सहाय बालक पुत्रोंको कैद करना विचारा। वह उपाय भी करने लगा। परन्तु उसका यह विचार पूरा नहीं हुआ। बहुत शीघ्र राठौड़ सैनिक सरदार आदिको यह बात मालूम हो गई; अतएव वे सावधान होकर यशोवन्तसिंहके निस्सहाय कुटुम्बके बचानेका प्रबन्ध करने लगे। इसके लिये उनको बड़े बड़े कठिन प्रबन्ध करने पड़े।

मारवाड़नरेश यशोवन्तसिंहके बहुतसे पुत्र थे, जिनमें सबसे बड़ेका नाम अजित था। जिस समय औरङ्गजेबने धोखा देकर उनकी हत्या कराई उस समय अजितकी उमर बहुत ही कम थी; तौभी उसकी माता उसे ही गद्दी पर बिठाकर स्वयं राज्यकार्य देखनेका निश्चय कर चुकी थी। यशोवन्तसिंहकी रानीने ऐसा निश्चय किया इसीसे वह पतिके साथ सती न हो सकी; परन्तु ईश्वरकी इच्छा नहीं थी कि उसकी इच्छा पूरी हो; अतएव उसके मनकी बात मन हीमें रहकर नष्ट हो गई। प्यारे पतिके मरनेकी चोट अभी उसके हृदयमें ताजी थी ही कि इतनेमें उस दुःखिताको पुत्रकी चिन्ता लगी। वह अनेक प्रकारकी चिन्ता करती करती घबरा गई कि जिस पुत्रके लिये उसने प्यारे पतिका शोक सह लिया, क्या उस पुत्रसे उसे हाथ धोना पड़ेगा? परमेश्वरकी क्या ऐसी ही इच्छा है? अन्तमें कोई दूसरा उपाय न देखकर उसने राणा राजसिंहकी शरण लेनेका निश्चय कर उनके यहां अपना एक दूत भेजा। राणाजीने शरण देना प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार कर यशोवन्तसिंहके ज्येष्ठ पुत्र अजित तथा उसके अन्य भाइयोंको अपने यहां बुला भेजा। उनका निमन्त्रण पाकर बालक अजितसिंह ढाईसौ पराक्रमी राजपूत सैनिकोंके सहित मेवाड़की ओर चला। सब लोग अरावली पर्वतमालाके दुर्गम रास्तोंसे जा रहे थे; इतनेमें चक्करदार पहाड़ी मार्गके एक ओरसे पांच हजार मुगल सैनिक शीघ्रतापूर्वक निकल पड़े और उन्होंने चारों ओरसे इनको घेर लिया और अजितसिंहको कैद करके ले जानेका उद्योग करने लगे। मुगलोंका यह धोखा देना देखकर राठौड़ सैनिकोंने भी जोशमें आ तलवारें खींचीं। उस तङ्ग पहाड़ी स्थानमें मुगलों और राठौड़ोंमें बहुत देरतक लड़ाई हुई। इस बीचमें राजकुमार अजितसिंह अपने शरीररक्षकोंके साथ मेवाड़में पहुंच गया। इधर इसलिये कि जिसमें मुगल लोग उसका पीछा न करें राठौड़ सैनिकोंने उनको पूरी तरह लड़ाईमें उलझा रखा।

राजकुमार अजितसिंह मेवाड़में पहुंचा। राणा राजसिंहने बड़े आदर और सम्मानसे उसका स्वागत किया और उनके रहनेके लिये कैलवा राज्य नियत कर दिया। दुर्गादास नामक एक साहसी राजपूतवीर उसकी रक्षाके लिये नियुक्त किया गया। उस पराक्रमी राजपूतवीरकी रक्षामें कुमार अजित बड़े सुखसे कैलवामें रहने लगा। इधर उसकी मां मारवाड़में लौटकर शत्रुओंको दुष्टताका उचित फल चखानेके उपाय करने और सुभीते सोचने लगी। जो बदला लेनेका विचार उसके जीमें आया उसे पूर्ण करनेके लिये उसने एक बहुत बड़े काममें हाथ डाला। वह बहुत बड़ा काम प्रधान प्रधान राजपूत राजाओंमें परस्पर एकता कराना था। उसका उद्योग बहुतसे अंशोंमें सफल हो गया। बहुत शीघ्र मेवाड़, मारवाड़ और आमेरके नरेशोंने एकविचार होकर शत्रुओं पर चढ़ाई करनेकी प्रतिज्ञा की। ऐसे बड़े कामके करनेके लिये राजपूती बल इससे पहले कभी ऐसे अच्छे ढङ्गसे संयुक्त नहीं हुआ था। परन्तु दुःखकी बात है उनकी एकता बहुत दिनोंतक नहीं रही। फिर थोड़ेही दिन बाद सीसोदियों, राठौड़ों, कछवाहोंका प्राचीन वैर प्रकट हुआ। यदि ऐसी एकता कमसे कम लगातार एकसौ वर्षों तक बनी रहती, यदि ऐसे ही संयुक्त रहकर राजपूत अपनी प्रतिज्ञाका पालन करनेके लिये यत्न करते रहते, तो भारतका दुःखरूपी अन्धकार दूर हो जाता और सुखका प्रकाश हर ओर फैल जाता;—भारतका राजमुकुट विदेशी राजाके सिर पर न होकर किसी हिन्दू राजाके सिरपर होता।

जिस उद्देश्यसे औरङ्गजेबने जयसिंह और यशोवन्तसिंहकी हत्या कराई थी उनकी हत्या करानेके बाद वह उस उद्देश्यके अनुसार काम करनेको समर्थ हुआ, क्योंकि वेही उसके रास्तेमें कण्टकके समान थे। अब दोनों कांटोंके न रहनेसे उसे अपना मतलब निकालनेके लिये यत्न करनेका अवसर मिल गया; पर वह निश्चिन्ततासे अपनी इच्छाके अनुसार कार्य न कर सका। एक और वीर तेजस्वी नरेशने उसके कामोंमें बाधा डाली। वह तेजस्वी वीर नरेश और कोई नहीं था; स्वयं राणा राजसिंह थे। जब औरङ्गजेबने अपनेको निष्कण्टक समझकर "जिजिया" या "मुण्डकर" लगाया और जब इस अनुचित करके कारण सारा हिन्दूसमाज दुःखित हो हाहाकार मचाने लगा, तब राणा राजसिंहके मनमें इस विषयका वि-

चार उत्पन्न हुआ । उन्होंने सोचा—"भीष्म कर्ण भीम अर्जुनकी मातृभूमि क्या आज क्षत्रियोंसे एकदम खाली हो गई है, या ईश्वरने इन मुगलोंको अमर करके इस देशमें भेजा है ?— नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। मुसलमानोंकी अधीनता तो अभागी भारतवासी बहुत दिनोंसे भोगते आते हैं, परन्तु ऐसा अत्याचार कभी नहीं हुआ था। भारतवासी क्या ऐसा कठोर अत्याचार चुपचाप सह लेंगे ?" ऐसा विचार करनेके उपरान्त राणा राजसिंहने इस करका प्रतिवाद किया और इसके लिये उन्होंने तेजस्विनी और भावभरी भाषामें एक लम्बा चौड़ा पत्र लिखा। वह पत्र संसारप्रेम, मनुष्यहितैषिता और उदारनीतिसे आरम्भसे अन्ततक पूर्ण था। नहीं कहा जा सकता कि इतने बड़े संसारमें और किसीने ऐसा कोई पत्र कभी लिखा या नहीं। वास्तवमें वह पत्र ऐसा ही था। उसे पढ़नेसे राणा राजसिंहकी लेखचातुरी पर मन मुग्ध हो जाता है * ।

* प्रसिद्ध आर्म साहबने पहलेपहल इस पत्रको युरोपमें प्रकाशित किया था; परन्तु उन्होंने भ्रमसे लिखा था कि यह पत्र मारवाड़नरेश महाराज यशोवन्तसिंह का लिखा हुआ है। टाड साहबने लिखा है कि "यह पत्र यशोवन्तसिंहका कभी नहीं हो सकता; क्योंकि इसमें जिस "मुण्डकर" की बात लिखी है वह कभी उनके जीवनसमयमें प्रचलित नहीं हुआ था । इस पत्रमें एक जगह रामसिंहका नाम लिखा है इससे भी यही बात प्रकट होती है। रामसिंह यशोवन्तसिंहके समसामयिक महाराज जयसिंहके उत्तराधिकारी थे और यशोवन्तसिंहके शरीरान्तके एक वर्ष बाद वे जयसिंहकी गद्दी पर बैठे थे।" टाड साहबकी लिखावटसे निश्चय होता है कि इस पत्रको राणा राजसिंहने ही लिखकर भेजा था । टाड साहबने यह भी लिखा है कि "उदयपुरमें मेरे मुंशीने इस पत्रकी एक पूरी नकल पाई थी, उससे साफ साफ मालूम होता है कि इसे राजसिंहने लिखा था।" अस्तु, पत्रका आशय नीचे प्रकाशित किया जाता है,—

"सर्वशक्तिमान् परमेश्वरकी अनन्त महिमा और चन्द्र सूर्यकी तरह प्रत्यक्ष आपकी दयालुता सब प्रकार प्रशंसा और धन्यवादके योग्य है । यद्यपि यह आपकी भलाई चाहनेवाला आपके सामने नहीं है, परन्तु राजभक्त और कर्त्तव्यपालन करनेवाले लोगोंका जो कार्य है उससे अलग नहीं है । मेरी दृढ़ इच्छा है कि

इस पत्रने औरङ्गजेबका क्रोध और भी बढ़ा दिया। वह पहले हीसे राणा राजसिंहसे इस कारण बहुत ही क्रुद्ध था कि वे रूपनगरकी राजकन्याको हर ले गये थे। फिर इसके अतिरिक्त राजकुमार अजितसिंहको उन्होंने अपने यहां आश्रय दिया था; इस बातसे भी वह उनसे बहुत चिढ़ा था। पर आज यह प्रतिवाद का पत्र पाकर क्रोधको वह बिलकुल न सम्हाल सका। मेवाड़ पर चढ़ाई करनेका निश्चय कर उसने बहुत शीघ्र एक बहुत बड़ी सेना तैयार की जानेकी आज्ञा दी।

भारतवर्षके सब प्रदेशों और सब राज्योंके नरेश, भले लोग, मिरजा, राजा, राय; ईरान, तूरान रूम शामके अधिकारी; सात प्रकारके जलवायुमें रहनेवाले और जल तथा स्थलके रास्तोंसे जानेवाले सभी लोगोंका सुख बढ़े। जहांतक बना मैंने इस इच्छा के अनुसार कार्य करनेमें त्रुटि नहीं की। मेरी इस इच्छाकी बात किसीसे छिपी नहीं है और न आपहीको इस विषयमें कुछ सन्देह होगा। इस समय अपनी पूर्व सेवा तथा आपकी पूर्व आज्ञाओं पर विचार करके मैं आपका ध्यान कुछ बातोंकी ओर आकर्षित करता हूं। इन बातोंका साधारण और खास लोगोंसे बहुत कुछ सम्बन्ध है।

'मैंने सुना है कि आपने अपने इस भलाई चाहनेवालेके अधीनोंके विरुद्ध अपनी कुछ इच्छाके पूर्ण करनेके लिये बहुत धन व्यय किया है और खाली खजानेको भरनेके लिये एक अनुचित कर लगाया है।

"आपको विदित हो कि आपके पूर्वज जलालुद्दीन अकबरने जिनका सिंहासन स्वर्गमें है सब जाति वर्ण और सम्प्रदायके लोगोंका पुत्रकी तरह पालन करके ५२ वर्षों तक न्याय और अपक्षपातसे निष्कण्टक राज्य किया। ईसाके या मूसाके धर्म्मका—दाऊदके या मुहम्मदके धर्म्मका—मतलब यह कि चाहे कोई किसी धर्म्मका माननेवाला हो उनके राज्यमें सबको समान स्वाधीनता थी। जिस धारियन सम्प्रदायको प्रकृतिके नित्यत्वका विश्वास ही नहीं है, या जो सम्प्रदाय यह कहा करता है कि यह संसार आपसे आप पैदा हुआ है, इस सम्प्रदायके लोग हों चाहे ब्राह्मण हों सब पर उनकी बराबर कृपा थी और सबको उनसे आश्रय मिलता था। उनके इसी निष्पक्ष तथा अभेद बर्तावोंके बदले में उनकी समस्त प्रजाओंने उनको "जगद्गुरु" की उपाधि दी थी।

आज्ञानुसार तैयारी होने लगी । परन्तु इस लड़ाईके लिये जो बड़ा भारी प्रबन्ध हुआ था उसका हाल जानकर ऐसा मालूम होता है कि मानों औरङ्गजेबने कोई बहुत बड़ा राज्य जीतनेके लिये यह प्रबन्ध किया था । जो राजसिंह उस समय एक प्रकार बिलकुल निस्सहाय थे, जो भाग्यदोषसे मुगल बादशाहकी समभमें

"जो माननीय मुहम्मद नूरुद्दीन जहांगीर शाह इस समय स्वर्गमें हैं उनके छत्रकी ठण्डी छाया २२ वर्षों तक प्रजाओंके सिरके ऊपर थी । लड़ाईके समय बड़ी वीरतासे तलवार चलाने और मित्रोंके साथ विश्वासका बर्ताव करनेहीसे वे सब कामोंमें सफलता प्राप्त करते थे ।

"माननीय सुप्रसिद्ध शाहजहां भी ३२ वर्षों तक शान्ति और सुखका राज्य भोगकर अपनी धर्मपरायणता और दयाके कारण खूब यश पाकर इस समय स्वर्गमें विराज रहे हैं ।

"आपके पूर्वजोंके हृदयमें ऐसीही हितैषिता थी और ऐसीही अच्छी उनकी प्रवृत्ति थी । ऐसीही अच्छी और मङ्गलमयी प्रवृत्तिका यह फल था कि जहां जहां वे जाते थे वहां वहां जय और श्री उनके आगे आगे चलती थीं और इसी अच्छी प्रवृत्तिके प्रभावसे वे अनेक देश और दुर्ग अपने अधीन कर सके थे । परन्तु, श्रीमन्, आप अपने राज्यके विषयमें विचार कर देखिये कि आपके शासनसमयमें कितने राज्य और दुर्ग स्वतन्त्र हो गये हैं और कितने दिन पर दिन होते जाते हैं । और ऐसी अवस्थामें जब राज्यके सभी स्थानोंमें लूट पाट उपद्रव ज़ोर जबर्दस्ती जुल्मकी धूम है मुगल साम्राज्यका अवश्यही और भी क्षय होगा । आपकी आंखोंके सामने ही प्रजाएँ पांवों तले कुचली जा रही हैं; साम्राज्यके सब प्रदेश सब स्थान महा दरिद्र होते जाते हैं; चारों ओर खूनखराबी हो रही हैं; विघ्न और विपत्तियां बढ़ती ही जाती हैं ! श्रीमन्— ! जरा विचारिये कि जब दीनता और दरिद्रताका आक्रमण राजाओं और राजपुत्रों पर भी हुआ है तब उनके अधीन सामन्तों और सरदारोंकी क्या दशा हो सकती है ? सैनिकों और सेनापतियोंको सुख नहीं है सन्तोष नहीं है; सब अनेक उपद्रवोंमें पड़े हुए हैं । राज्यके व्यापारी और मुसलमान असन्तुष्ट हैं; हिन्दू दीन हीन निस्सहाय निरवलम्ब हैं; और अनेक लोग ऐसी दुर्दशामें हैं कि केवल एक वक्त भोजन पाते हैं । तिसपर, कितने

एक साधारण जमींदार से थे, मुगलोंके बड़े साम्राज्यके मुकाबलेमें जिनका राज्य कुछ भी नहीं था, कुछ औरंगजेबने उनके राज्यपर चढ़ाई करनेके लिये नहीं मालूम क्यों इतना अधिक प्रबन्ध किया ! उसने अपने प्रधान सेनापतिको बुलाकर बड़े अभिमानके साथ उससे कहा—"मेरे साम्राज्य भरमें जहां जहां जितने सैनिक हैं सबको इकट्ठा करके एक इतना मजबूत दल बनाओ जिसे कोई जीत न सके।"

दुःख और दुर्भाग्यकी बात है कि भूख प्यासके मारे क्रोध और निराशतासे कितने लोग बराबर सिर पीट पीटकर रोते और चिल्लाते हैं।

"जो जाति ऐसी दीन हीन दरिद्र दशामें हो उसपर जो राजा कठोर कर लगाता है उसकी मर्यादा कैसे रह सकती है? भारतकी ऐसी बुरी अवस्थामें पूर्व से पश्चिम तक सारा भारतवर्ष गला फाड़कर कह रहा है कि—"हिन्दुस्थानका बादशाह औरङ्गजेब दरिद्र निस्सहाय हिन्दू योगियोंसे डाह करके ब्राह्मणों, भक्तों, बैरागियों, योगियों, संन्यासियों पर कर लगाता है; बल्कि तैमूरी वंशके गौरव सम्मानकी उपेक्षा कर वह संसारसे विरक्त रहनेवाले निरपराध तपस्वियोंपर भी जोर जताता है।"— जो पुस्तकें पवित्र और ऐश्वरीय भावसे भरी प्रसिद्ध हैं उनपर यदि आपको विश्वास हो तो आप एक बार उनको पढ़ें। उनके पढ़नेसे अवश्य आपको शिक्षा मिलेगी कि ईश्वर सबका है, केवल मुसलमानोंका नहीं। चाहे मूर्त्तिपूजक हो या मजहब इस्लामका माननेवाला, सब उसकी दृष्टिमें समान हैं। वर्णविभेद उसीका किया हुआ है। वही जीवोंका जीवनदाता है। आपकी जिन मस्जिदोंमें उसके नाम नामाज पढ़ी जाती है और मूर्त्तिपूजकोंके जिन पूजन-मन्दिरोंमें शङ्ख घण्टोंकी ध्वनि होती है, वे सभी सबकी उत्पत्ति करनेवाले परमेश्वरकी पूजाकी वस्तुएं हैं। भिन्न जातिके लोगोंके धर्म्म और आचार विचारकी निन्दा करना उस सर्वशक्तिमान् परमेश्वरकी इच्छाके विरुद्ध बात है। यदि हम किसी चित्रको बिगाड़ दें तो यह स्वाभाविक बात है कि हमने चित्रकारकी नाराजगी का काम किया। इस विषयमें कविने बहुत सच कहा है कि "परमेश्वरके विविध कार्यों का अपमान करने या उनमें दोष ढूंढ़नेका कभी विचार न करो।"

"संक्षेप यह कि हिन्दुओं पर आप जो कर लगा रहे हैं वह बिलकुल न्याय-विरुद्ध है। उदारनीतिके साथ विचार करनेसे मालूम होगा कि यह बात न केवल

औरंगजेबकी आज्ञा प्रचारित होते ही मुगल-साम्राज्यमें जहां जहां जितने सैनिक सेनापति आदि थे सब इकट्ठे हुए । काबुलसे अजीमशाह बुलाया गया और बङ्गालसे शाहजादा अकबर । यहांतक कि बादशाहका उत्तराधिकारी सुलतान मुअज्जम भी जो दक्षिणमें महाराष्ट्रकेसरी शिवाजीसे लड़ रहा था वहांकी लड़ाई छोड़कर इस बड़ी सेनामें आ मिला। इतनी बड़ी संयुक्त सेना ‡ लेकर क्रोधमें भरा हुआ औरङ्गजेब मेवाड़राज्यमें पहुंचा । दूर ही राणा राजसिंहने मुगल सैनिकोंका कोलाहल सुना । कोलाहल सुनते ही उनके वीरहृदयमें बड़ा ही उत्साह भर गया। खूब जोश भरे शब्दोंमें उन्होंने अपने अधीनस्थ सामन्तों और सरदारोंको उत्तेजित किया और अभिमानी औरङ्गजेबके युद्धके बाजोंकी ध्वनि दूर करनेके लिये सबको तैयार होनेकी आज्ञा दी । उनकी सेना थोड़ी थी अतएव गिह्लोट वीरोंकी सदाकी प्रथाके अनुसार उन्होंने चुने हुए पहाड़ी स्थानों जैसे क

न्यायविरुद्ध है बल्कि एकदम नई है । इससे देश अवश्य दीन हीन हो जायगा। ऐसा कभी नहीं हुआ । इससे भारतमें जो शासननीति सदासे चली आई है वह बिगड़ेगी। पर खैर, यदि आप अपने धर्मके अनुरागके कारण यह नई बात करते हों तो न्यायानुसार सबसे पहले यह कर राजा रामसिंह पर लगाइये, क्योंकि वेही वर्त्तमान हिन्दुओंमें प्रधान पुरुष हैं। उनके बाद अपने इस हितैषीको स्मरण कीजिये;—इसके मुकाबलेमें आपको कम कष्ट होगा। निरपराध कमजोर चींटियों और मक्खियोंको दुःख देना वीर या भले पुरुषके योग्य नहीं है। आश्चर्य तो यह है कि आपके मन्त्री आपको अच्छी और ऐसी सलाह नहीं देते हैं जिससे सम्मान और सत्यकी रक्षा हो!"

† औरंगजेब और उसके उत्तराधिकारी राजपूत राजाओंको "जमींदार" कहते थे !!!

‡ मुगल बादशाहोंके समय जैसी तोपें काममें लाई जाती थीं वैसी अच्छी तोपें उस समय तक युरोपमें आविष्कृत नहीं हुई थीं। काश्मीरयात्राके समय औरंगजेब ७० बहुत बड़ी, ६० उनसे छोटी घोड़ोंपर और ३० बहुत छोटी छोटी तोपें ऊँटोंपर ले गया था । टाड साहबने भी यह बात लिखी है और बर्नियर साहबने तो इस युद्धकी तैयारी स्वयं देखी थी।

म्दरा इत्यादिमें सीसोदीय वीरोंको इकट्ठा करनेका निश्चय किया। इसके साथही मेवाड़की नीची भूमिमें रहनेवाले लोग भी सब बस्तियोंको छोड़कर दुर्गम अरावली पर्वतमालामें जा बसे। इस भांति मेवाड़के नीचेके स्थान मनुष्योंसे एक प्रकार बिलकुल खाली हो गये। औरङ्गजेबके सैनिकोंने उन खाली स्थानोंपर तुरन्त अधिकार कर लिया। चित्तौड़, मण्डलगढ़, मुन्दोसर, जीरण तथा और कई दुर्ग थोड़े ही समयमें मुगलोंके अधीन हो गये। इतना कार्य्य हो जानेके बाद औरंगजेब ने जीते हुए दुर्गों में अपने सैनिक बैठाये और फिर राणा राजसिंह पर आक्रमण करनेके लिये अरावलीके अन्दर प्रवेश करनेका विचार किया।

इस भयङ्कर चढ़ाईके समय मुसलमानोंके पांवोंके नीचे रौंदे जानेसे मानों समग्र मेवाड़भूमि कांपने लगी। उनके घोर अत्याचारोंसे हिन्दू अत्यन्त पीड़ित होकर इधर उधर भागने लगे। राणा राजसिंह लक्षण देखकर समझ गये कि इस समय न केवल सीसोदीय कुलके राज्य और गौरवके नष्ट होनेकी शङ्का है वरन् समग्र राजपूत जातिके सनातनधर्म्म और प्राचीन प्रथाओंके बिगड़नेका भय है। जिस पवित्र धर्म्मको विजातियोंसे बचानेमें उनके पूर्वजोंने किसी प्रकार चिन्ता किये बिना अपने हृदयका रक्त बहाया था, आज केवल उस धर्म्मके ही जानेका भय नहीं था बल्कि राजपूतोंकी जीवनस्वरूपिणी क्षत्राणियोंके पवित्र सतीत्वके भी बिगड़नेकी शङ्का थी! ऐसी अवस्थामें क्या राजपूत वीर लोग निर्वीर्य्य और बेकाम लोगोंकी तरह चुपचाप बैठे रह सकते थे? जिनके सम्मान और शिष्टाचारमें जरा भी अन्तर पड़नेसे उनके हृदयमें बहुत कड़ी चोट पहुंचती थी, म्लेच्छोंसे बचानेके लिये जिनको वे अपने हाथोंसे वध कर डालते या धधकती हुई आगमें डाल देते थे, आज उन्हीं पवित्र क्षत्राणियोंको कलङ्कित होते कौन राजपूत शरीरमें प्राण रहते देख सकता था? कोई नहीं। इसीलिये औरंगजेबकी चढ़ाई रोकनेके लिये सभी राजपूत वीर आ आकर राणा राजसिंहके दलमें मिलने लगे। यहां तक कि मेवाड़के पश्चिम ओरके पहाड़ोंके प्राचीन निवासी "पलिन्द्र और पलिपत भी * हजारों कमान लेकर 'हिन्दूपति' की रक्षाके लिये" बड़े उत्साहमें भरकर मेवाड़की

* उस प्रान्तकी बोलचालमें उक्त पहाड़ी स्थानोंको 'पल' कहते थे। अतएव उनके अधिकारी 'पलीन्द्र' या 'पलिपति' अथवा 'पलिपत' कहे जाते थे।

विजयवैजयन्तीके चारों ओर इकट्ठे हुए। आज बहुत दिनोंके बाद वीरवर बप्पा-रावलका प्रचण्ड "छत्री" गिह्लोट राजाके सिरके ऊपर दिखाई दिया। उसकी ज्योति देख उत्साहित होकर राजपूत वीरोंने जयध्वनि की। वह ध्वनि अरावली पर्वतमालाके प्रत्येक शृङ्गसे टकराती प्रत्येक गुफामें प्रतिध्वनित होती हुई दूर दूर तक फैल गई। त्योंही मुगलसेनाने "अल्लाहो अकबर" का रव किया। इस प्रकार हिन्दू और मुसलमान सैनिक खूब उत्साहमें भरकर एक दूसरेकी ओर बढ़ने लगे।

राणा राजसिंहने अपने सैनिकोंको तीन भागोंमें बांटा और सब भागोंको योग्य सेनापतियोंके सुपुर्द कर भिन्न भिन्न स्थानोंमें स्थापित किया। बड़ा राज-कुमार जयसिंह अपने दलके सहित अरावलीकी चोटीपर गया और ऐसी जगह उसने अपनी सेना सज्जित की जहांसे शत्रुओंका आक्रमण दोनों ओरसे रोका जा सकता था। गुजरात और उसके आसपासके लोगोंसे बातचीत करनेका सुभीता देखकर राजकुमार भीमसिंह पर्वतोंके पश्चिम ओर सेना लेकर गया। इधर राणा राजसिंह स्वयं प्रधान सैन्यदल लेकर नाइन नामक स्थानमें खड़े हुए। इस स्थानके विषयमें यदि हम यह कहें कि यह ऐसा था कि शत्रु यहांतक पहुंच नहीं सकते थे तो हमारा यह कहना कुछ अनुचित न होगा। इस पहाड़ी स्थलमें राणा जीने ऐसी कुशलता और निपुणतासे अपनी बड़ी सेना स्थापित की कि शत्रुओंके वहां आते ही चारों ओरसे उनपर आक्रमण किया जा सकता था। इस प्रकार अपनी सेनाको तीन भागोंमें बांट † तथा भिन्न भिन्न स्थानोंमें उनको सज्जित कर वे उस पहाड़ी स्थानमें ठहरकर बड़े उत्साहके साथ शत्रुओंकी प्रतीक्षा करने लगे। यदि औरङ्गजेब इस नाइन नामक पहाड़ी प्रदेशमें प्रवेश करता तो अवश्य दलबल सहित मारा जाता; परन्तु उसका सौभाग्य कहना चाहिये कि वहां न जाकर वह उसके बाहर बाहर दुबारी नामक भीलराज्यमें गया और चतुर तिवर खांकी सलाहसे ५० हजार सैनिकोंके सहित अपने पुत्र अकबरको उसने राजधानी

† कहा जाता है कि शक्तावत सरदार गरीबदासने यह युक्ति निकाली थी। भट्टग्रन्थोंमें इस विषयमें पूरा पूरा हाल लिखा है कि जब औरङ्गजेबकी सेना दिखाई दी तब गरीबदासने बड़ी अच्छी वक्तृता देकर अपने सैन्यमण्डलको उत्साहित किया था।

उदयपुरकी ओर भेजा। औरंगजेब जिस स्थानमें दलके सहित ठहरा वह राजधानी के चारों ओर अण्डाकारमें था। उदयपुरको यदि इस स्थानका मध्यविन्दु मानकर किसी ऊँची जगहसे चारों ओर दृष्टि दौड़ाइये तो इसका अण्डाकार होना स्वयं प्रकट हो जायगा। यह स्थल दक्षिणोत्तर चौड़ा और पूर्वपश्चिम तङ्ग है। इसकी लम्बाईका भाग कोई १४ और तङ्ग भाग ११ मील होगा। ऊँची अरावली पर्वत-मालासे कितनी ही शाखाएँ निकलकर इस अण्डाकार प्रदेशमें हर ओर फैली हुई हैं। इन शाखा पर्वतोंके किसी अंशकी ऊँचाई छ:सौ हाथ है और किसीकी आठसौ तक। इस पहाड़ी प्रदेशमें छोटे छोटे असंख्य वन और पर्वतोंसे निकले हुए नाले हैं। इसके एक प्रान्तमें सुन्दर पिशोला झील इस प्रदेशकी शोभाको और भी बढ़ा रही है। इस सरिताओं और जंगलोंसे भरी हुई सुनसान पहाड़ी भूमिसे बाहर निकलकर पूर्वभागकी लम्बी चौड़ी बस्तियोंमें जानेके लिये केवल तीन पहाड़ी रास्ते हैं। पहला बहुत उत्तर हटकर है; यह देलवाड़ाकी बगलसे गया है। दूसरा पहले और तीसरेके बीचमें है; यह ऊपर कहे हुए दुबारी प्रदेश के पाससे निकला है। तीसरा मार्ग दुर्गम चप्पनके निकट है; इसीका नाम नाइन है। इन तीनों पहाड़ी पथोंमें एक औरोंसे अधिक सुगम था; औरंगजेब उसीके पास उदयसागर सरोवरके बहुत निकट खेमे खड़े कराकर ठहरा।

पिताकी आज्ञा पाकर शाहजादा अकबर ५० हजार सैनिकोंके सहित राजधानीकी ओर बढ़ा। "उसे रोकनेवाला कोई नहीं मिला। महल, बाग, सरोवर, टापू सबकी ओर उसकी दृष्टि गई, पर कहीं कोई जीव उसे दिखाई नहीं दिया; सब ओर सन्नाटा था!" उसने एक जगह पड़ाव डाला। अकबरको कहीं किसी मनुष्यको न देखकर आश्चर्य नहीं हुआ; क्योंकि वह जानता था कि अत्याचारी शत्रुओंके आक्रमणसे अपना बचाव करनेके लिये मेवाड़के लोग अपने घरोंको छोड़ पहाड़ोंमें जा बसे थे। यह समझकर कि इस स्थानमें कोई आपदा नहीं आवेगी वह बड़ी निश्चिन्ततासे वहां टिका; पर वैसे निश्चिन्त भावसे वह बहुत दिनोंतक रहने नहीं पाया। शीघ्र ही राजकुमार जयसिंहने चढ़ाई करके उसे खूब ही कष्टमें डाला। भट्टकवियोंने लिखा है कि "कुछ लोग नमाज पढ़ रहे थे; कुछ बैठे आनन्दसे भोजन कर रहे थे; कहीं कुछ लोग शतरञ्ज खेल रहे थे। सो वे आये थे

तो लड़ते, पर ऐसे निश्चिन्त हो रहे थे।" अस्तु, जयसिंहने सहसा अकबर पर चढ़ाई कर दी और उसकी सेनाको मार काटकर नष्ट किया। बहुतसे मारे गये और बाकी मैदान छोड़कर इधर उधर भागनेका उद्योग करने लगे; परन्तु भागनेका किसी ओर उनको रास्ता नहीं मिला; अतएव उनको भी घेरकर राजपूतोंने मारा। तब अकबर औरङ्गजेबकी सहायता पानेकी आशा कर दुवारीकी ओर बढ़ने लगा; पर राणा राजसिंहने अपनी सेनाका कुछ अंश उस पहाड़ी मार्गमें भेजकर औरङ्गजेबकी सेनाको उलझा रखा जिससे अकबरको सहायता पहुंच न सकी। उस समय अकबर बचावका कोई उपाय न देख गोगुण्डा होकर लम्बे चौड़े मारवाड़ राज्यमें निकल जानेका यत्न करने लगा; पर उसका यत्न सफल नहीं हुआ, बल्कि वह और भी सङ्कटमें पड़ गया। पहाड़ी भोमिया सामन्त अपने भील सहायकोंको लेकर उसका रास्ता रोककर खड़े हुए। कुछ पहाड़ों और वृक्षों पर जा चढ़े और वहांसे शत्रुओं पर तीरोंकी वर्षा करने तथा पत्थरकी बड़ी बड़ी चट्टानें गिराने लगे। इधर राजकुमार जयसिंहने पीछेसे जाकर रास्ता रोका। इस प्रकार चारों ओरसे घिरकर औरङ्गजेबका पुत्र अकबर बड़े ही सङ्कटमें पड़ा। जिस ओर वह दृष्टि डालता उसी ओर उसे मृत्युका सामान दिखाई देता। ऐसे ही भयङ्कर सङ्कटमें पहाड़ी स्थानमें सब ओरसे घिरकर अकबरने कई दिन बिताये। धीरे धीरे ज्यों ज्यों दिन बीतते गये त्यों त्यों उसकी विपत्तियां बढ़ती गईं। अन्तमें यहांतक नौबत आई कि खानेके लिये अन्न भी उसके पास नहीं था। तब लाचार होकर उसने जयसिंहसे कृपा करनेको कहला भेजा और जिस कारणसे यह लड़ाई ठनी थी उस कारणको भी नष्ट करनेकी प्रतिज्ञा की। उदारहृदय जयसिंहने उसकी बातका विश्वास किया। उसकी दुर्दशा देख उसपर दया करके घिराव छोड़ दिया, बल्कि यहांतक कृपा की कि उसकी बची हुई सेनाको रास्ता दिखानेके लिये जीलवाड़ाके पहाड़ी रास्ते तक अपने कुछ पथप्रदर्शक भेजे। पथप्रदर्शकोंकी सहायतासे वहांसे निकलकर अकबरने अपने लोगोंके सहित चित्तौड़-दुर्गकी दीवारके नीचे जाकर विश्राम किया ❋।

❋ प्रसिद्ध इतिहासवेत्ता आर्म साहबने अपने इतिहासमें औरङ्गजेबके राजत्वके विषयमें बहुतसी बातें लिखी हैं। उन्होंने लिखा है कि औरंगजेब स्वयं दलबलके

प्रसिद्ध मुसलमान वीर दिलेरखां एक और सेना लेकर मारवाड़से देसूरी नामक पहाड़ी दर्रेसे होकर उस दुर्गम पहाड़ी स्थानमें गया था। बहुतोंका अनुमान है कि शाहजादे अकबरको उस घिरे हुए स्थानसे बाहर निकाल लानेके लिये ही वह वहां गया था। पहले तो उसे या उसकी सेनाको किसीने रोका नहीं; परन्तु

सहित इसी तरह घिर गया था और फिर उदारहृदय राजपूतनरेशकी कृपासे उसने छुटकारा पाया था। आवश्यकता समझकर ग्रामें साहबके लेखके कुछ अंश का अनुवाद हम नीचे प्रकाशित करते हैं,—

"मुगलसेना पहाड़ी रास्तेसे बड़े बल और परिश्रमसे आगे बढ़ने लगी। परन्तु औरंगजेबके साथ जो लोग थे वे उन रास्तोंसे अनजान थे, इस कारण कुछ दूर जानेके बाद सामने उनको कुछ छोटी छोटी पहाड़ियां मिलीं जिनसे उनका आगे बढ़ना रुक गया। इधर राजपूतोंने एक ही रातमें उन सभोंके पीछे धावा करके यहांतक पहुंचकर पेड़ोंको काट काट उनके द्वारा उनके पीछेका भी रास्ता बन्द कर दिया। उस तङ्ग स्थानमें बन्द हो जानेपर औरङ्गजेब और उसके साथी बाहर निकलनेके लिये बहुत उद्योग करने लगे; पर राजपूत वीरोंने पहाड़ों पर चढ़ और तीर मारकर उनका उद्योग व्यर्थ किया। औरङ्गजेबकी जो सेना इस घिरावके बाहर थी वह भी कटे हुए वृक्षोंकी बनी हुई मजबूत दीवार तोड़कर सहायता पहुंचानेके लिये अन्दर न जा सकी। औरङ्गजेबकी सर्केशियावाली प्यारी बेगम भी इस लड़ाईमें गई थी; वह भी अपने रक्षकोंके सहित एक जगह पहाड़ोंमें घिर गई। उसके शरीररक्षकोंने इस डरसे कि अधीनता न स्वीकार करनेसे कदाचित् बेगमको कुछ दुःख उठाना पड़े राजपूतोंकी आधीनता स्वीकार कर ली। जिस समय बेगम राणाजीके सामने पहुंचाई गई उस समय उन्होंने यथोचित सम्मानसे उसका स्वागत किया। भूख प्यास और विपत्तिके कष्टका जरा स्वाद चखानेके ही लिये राणाजीने औरंगजेबको दो दिनोंतक पहाड़ोंमें घेर रखा था। यदि और दो चार दिन औरंगजेब और उसके साथियोंको उस तरह भूखे प्यासे बन्द रहना पड़ता तो अवश्य सबका प्राणान्त हो जाता; परन्तु उदार राणाजीने तीसरे दिन अपने सैनिकोंको उन सबके भाग जानेका रास्ता कर देनेकी आज्ञा दी। जब औरंगजेब इस सङ्कटसे छुटकारा पा चुका तब राणाजीने रक्षकों

क्योंही वह वहां पहुंचा त्योंही विक्रम सोलङ्की * और गोपीनाथ राठौड़ने † बड़े ज़ोरशोरसे उसपर आक्रमण किया। उस स्थानमें दोनों दलोंमें बहुत देरतक लड़ाई होती रही। लड़ता लड़ता अन्तमें दिलेरखां मारा गया। इन दोनों लड़ाइयोंमें पराजित मुगलसेनाओंकी बहुतसी चीजें विजयी राजपूतोंके हाथ लगी थीं।

इस पहाड़ी लड़ाईका प्रबन्ध ऐसे अच्छे ढंगसे किया गया था कि अकबर और दिलेरखांको परास्त करनेके बाद राणा राजसिंह तुरन्त औरंगजेब पर भी आक्रमण कर सकें। मनमें अनेक आशाएँ किये हुए औरंगजेब अकबर और दिलेरखांकी लड़ाइयोंका फल जाननेके लिये शाहजादा अजीमके सहित दुबारी गांव में ठहरा हुआ था। उसके हृदयमें आशाकी कितनोंही लहरें उठ रही थीं; आशा में वह कितने ही सुखस्वप्न देख रहा था। पर उसके सब स्वप्न शीघ्र टूट गये;— बहुत शीघ्र राणा राजसिंहके आक्रमणसे अपना प्राण बचानेके लिये उसे व्यस्त होना पड़ा। दुबारीके लम्बे चौड़े दर्रेमें उसकी तथा राणा राजसिंहकी सेनाओंमें संग्राम आरम्भ हुआ। राजपूतसैनिक राजपूतपति राजसिंहकी वीरतासे उत्साहित और उत्तेजित होकर औरंगजेबका व्यूह तोड़नेके लिये बड़े साहससे उसकी ओर बढ़ने लगे। राठौड़वीर साहसी दुर्गादास औरंगजेबसे कठोर बदला लेनेके लिये अपने राठौड़ सैनिकोंको उसके विरुद्ध ले चला। जिसने राठौड़कुलका नाश किया था, विश्वस्त धार्म्मिक राठौड़ राजाकी हत्या धोखेसे विषके द्वारा कराई थी, आज राठौड़वीर दुर्गादासका उससे पूरा बदला लेनेका दृढ़ निश्चय था। औरंगजेब आज बड़े सङ्कटमें था। हृदयको पत्थर जैसा कठोर कर निष्ठुरतासे जो हिन्दुओं पर

के साथ उसकी बेगमको भी उसके पास पहुंचवा दिया और उससे केवल इतनी बात कहला भेजी कि "बदलेमें मैं इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता कि जाते समय रास्तेमें यदि आपको गाय आदि मिलें तो उनका वध न होने दीजियेगा। बड़ा अनुगृहीत होऊँगा।" परन्तु दुष्ट स्वार्थान्ध औरंगजेबने राणाजीकी इस उदारताका कुछ भी गुण न माना; किन्तु कहने लगा कि "राणाने भविष्य में बदला लिये जानेसे छुटकारा पानेके लिये हमको छोड़ा है!"

* रूपनगरके राजा।

† गोड़ारके अन्तर्गत गानोड़के अधिकारी। गोड़ार अब मेवाड़से अलग था।

अत्याचार करता था, जिनका नाश करनेके लिये उसने आज यह लड़ाई ठानी थी, वे क्या उसे चुपचाप बिना कष्ट उठाये चले जाने दे सकते थे? — कभी नहीं। यद्यपि औरंगजेबकी सेना सौगुनी अधिक थी, तौभी कोई राजपूत सामर्थ्य रहते उसे क्षमा नहीं कर सकता था। देखते देखते मुसलमानों और राजपूतोंमें युद्ध होने लगा। मुगलोंकी तोपोंको अंगरेज गोलन्दाज दागते थे। तोपोंसे भयंकर गड़गड़ाहटके साथ धुआं निकलकर आकाशको ढंक लेता था। उस गड़गड़ाहटके साथ अपना प्रचण्ड शब्द मिलाते हुए लड़ाईके नशेमें मत्त राजपूत बड़े उत्साहके साथ मुगलसेनाकी ओर बढ़ने लगे। धुएँके कारण कुछ देख न पड़ता था। तोपोंकी मारसे कितने ही राजपूत वीर पल भरमें इस संसारसे चले गये; परन्तु सैनिकोंका उत्साह कम नहीं हुआ— वरन् बराबर बढ़ता गया। तोपोंसे निकले हुए धुएँका बादल भेदते हुए अन्तमें वे मुगलसेनाके बराबर पहुंच गये। फिरङ्गी गोलन्दाजोंको उन्होंने अपनी तलवारोंका शिकार बनाया और जिन जञ्जीरोंसे तोपें जकड़ी हुई थीं उनको टुकड़े टुकड़े करके आगे बढ़नेकी रुकावट दूर की। मुगलोंका व्यूह बातकी बातमें टूट गया। तब उस छिन्न भिन्न व्यूहमें घुसकर राजपूत सैनिक इच्छानुसार मार काट मचाने लगे। अधिकांश मुगलसैनिकोंको उन्होंने काट गिराया। औरंगजेब मैदान छोड़कर भागा। उसकी तोपें, दूसरे अस्त्रशस्त्र, शाही झण्डा, बहुतसे घोड़े हाथी, अनेक खेमे छोलदारियां तथा बहुत प्रकारकी अन्यान्य चीजें राणा राजसिंहके हाथ लगीं। यह संग्राम— राजपूती धर्म्म और गौरवरक्षाका यह समर— वैक्रमीय संवत् १७३७ के * फाल्गुन मासमें वसन्त ऋतुमें हुआ था। यद्यपि इसमें राणा राजसिंहकी जीत हुई थी, पर मेवाड़ तथा अन्यान्य राज्योंके बहुतसे वीरोंके प्राण गये थे।

यद्यपि हार जानेसे औरङ्गजेब बहुत ही दुःखित हुआ, पर उसका उत्साह कम नहीं हुआ। हारने और अपमानित होनेका बदला लेनेके लिये उसने अपने सैनिकोंको चित्तौड़की चारदीवारीके नीचे एकत्र किया और सुलतान मुअज्जमको दक्षिणसे बुलाया। मुअज्जम उस समय महाराष्ट्रकेसरी महावीर शिवाजीसे लड़ रहा था; पर औरङ्गजेबने शिवाजीकी स्वाधीनता नष्ट करनेका उद्योग करनेकी

* मार्च सन् १६८०—८१ ई०।

अपेक्षा उत्तर प्रदेशमें अपने खोये हुए गौरवको पुन: प्राप्त करना अधिकतर आवश्यक समझा; इसीसे उसने अपने मुअज्जम नामक पुत्रको दक्षिणसे शीघ्र इधर चले आनेके लिये पत्र लिखा। पर उसका उद्देश्य सफल नहीं हुआ । वीरवर जयमल के वंशधर सांवलदासने कुछ राजपूत वीरोंके साथ चित्तौड़ और अजमेरके बीच ठहरकर दोनों नगरोंका सब सम्बन्ध तोड़ दिया और मुगलसेना पर आक्रमण करके उसे खूब ही दलित और मर्दित करना प्रारम्भ किया । औरङ्गजेब बड़ी शङ्कामें पड़ा। अन्तमें अपनी स्वाधीनता और अपने जीवनके भी नष्ट होनेका भय देख वह लड़ाई छोड़कर चले जानेको लाचार हुआ।

औरङ्गजेबकी बदला लेनेकी इच्छा पूरी नहीं हुई । जिस उद्देश्यसे उसने मेवाड़ पर आक्रमण किया था वह सफल नहीं हुआ । उद्देश्य सफल होना तो दूर था,—उसे हार खा और अपमानित होकर लड़ाईका मैदान छोड़कर भागना पड़ा। उसे बड़ा ही दु:ख हुआ; पर क्या करता ? बचावका कोई उपाय न देख आखिर अजीम और अकबर नामक अपने दो पुत्रोंको लड़ाईका भार सौंप कर तथा उनको इस विषयमें सलाह देकर कि जबतक नई मुगलसेना न पहुंच जाय तबतक किस तरह लड़ना, वह अपने शरीररक्षकोंके सहित अजमेरको चला गया। अजमेर पहुंचकर उसने अपने पुत्रोंके लिये सेना आदिका प्रबन्ध कर राठौड़वीर सांवलदासके विरुद्ध खां रुहेला नामक सेनापतिको १२ हजार सैनिकोंके सहित चित्तौड़की ओर भेजा । पुरमण्डल नामक स्थानमें मारवाड़ी सैनिकोंको लेकर सांवलदासने खां रुहेलेका सामना किया और पराजित कर पुन: अजमेरकी ओर उसे भगा दिया। इस लड़ाईमें मुगलसेनाकी बड़ी हानि हुई।

राणा राजसिंह, उनके उत्तराधिकारी और सहकारी वीर लोग ऊपर लिखी लड़ाइयोंमें विजय प्राप्तकर बड़े आनन्दसे रहने लगे । उधर राजकुमार भीमने अपने साथियोंके सहित पर्वतोंके पश्चिम ओर एक दूसरी लड़ाईमें जय पाई। उसने गुजरात पर आक्रमण किया। बहुत शीघ्र ईडर राज्य पर उसका अधिकार हो गया। हसन नामक मुसलमान उस समय वहांका अधिकारी था; उसे तथा उसकी सेनाको भगाकर बीरनगर होता हुआ भीम एकदम राजधानी पाटणमें जा पहुंचा और उसको उसने लूटा। इसी प्रकार सिद्धपुर, मौरासो आदि कई स्थान

भीमने जीते। उसके आक्रमणोंसे उन स्थानोंके लोग तङ्ग आकर आपसे आप भागने लगे; बहुतसे विनयके साथ उसके सामने जाकर क्षमा मांगने लगे। उनकी दीनताका हाल सुन उदारहृदय दयावान् राणा राजसिंहने भीमको वापस बुला लिया। पिताकी आज्ञा पाते ही भीम युद्धका उद्योग त्यागकर मेवाड़में जा पहुंचा।

हारे हुए शत्रुओंको क्षमा करना वीरहृदय राजपूतोंका एक प्रधान मन्त्र है;—इसी वीरमन्त्रके अनुसार वे कार्य किया करते हैं;—परन्तु दुष्ट औरंगजेबके कठोर अत्याचारोंके कारण उनको इस मन्त्रके विरुद्ध कार्य करना पड़ा। औरंगजेब जैसा निठुर था वैसा ही कृतघ्न भी था। जिस उदारहृदय राणा राजसिंहने कृपा करके उसके पुत्रको सङ्कटसे बाहर कर दिया था दुष्ट औरंगजेब उनका उपकार भूलकर उन्हींको पुन: कष्ट पहुंचाने लगा। पर फिर भी उसका मतलब न निकला। तौभी उसने दुष्टता नहीं त्यागी। अतएव राजपूत भी उससे उसकी दुष्टताका बदला लिये बिना न रह सके। राणा राजसिंहका दयालशाह नामक एक बड़ा साहसी और कार्यकुशल दीवान था। उसे मुगलोंसे बहुत द्वेष था; अतएव सवारोंकी एक सेना लेकर नर्मदासे बेतवा नदियोंतक विस्तृत मालवा राज्यको उसने लूटा। उसमें ऐसी वीरता थी कि कोई उसका मुकाबला न कर सका। क्रम क्रमसे सारंगपुर, देवास, सारङ्ग, मांडू, उज्जैन और चन्देरी पर उसने अधिकार कर लिया। दयालशाहने इन स्थानोंको लूटकर यहां जो मुसलमान सैनिक थे उनमेंसे अधिकांशका संहार कर डाला। इस प्रकार अनेक नगर और गांव उसके अधीन हुए। नगरोंके निवासी उसके उपद्रवसे इतने डरे कि जो जहां थे वहींसे भागे; किसीको दूसरेकी सुधि नहीं थी; यहांतक कि (भट्टग्रन्थोंमें ऐसा लिखा है कि) "प्रियतमा पत्नियों और प्यारे पुत्रोंको भी छोड़कर लोग प्राण बचानेके लिये भागे और जिन चीजोंको दयालशाहके सैनिक उठाकर न ले जा सके उनको उन्होंने जलाकर नष्ट कर डाला।" जिस अत्याचारी औरंगजेबने निराश्रय राजपूतोंको महा भयंकर कष्ट पहुंचाया था आज उसके अत्याचारोंका बदला लेनेमें दयालशाहके सैनिकोंने तनिक भी त्रुटि नहीं की; यहांतक कि धर्मके विषयमें भी बदला लिया। भट्टग्रन्थोंसे विदित होता है कि "काजियोंके हाथ पैर बांध दिये गये; उनकी दाढ़ियां मूड़ दी गईं और कुरानकी पुस्तकें कुओंमें डाल दी गईं।" दयालशाहने

अपने हृदयको इतना कठोर किया था कि जहांतक सम्भव था किसी मुसलमानको उसने क्षमा नहीं किया। मुसलमानोंके हाथसे मालवा राज्य छिन गया, बल्कि वह राज्य एक प्रकार मुनमान ऊसर हो गया। लूट मारसे दयालशाहको जो धन प्राप्त हुआ उसे उसने अपने मालिकके खजानेमें दे दिया और अपने प्रान्तकी बहुत शोभा बढ़ाई तथा उन्नति की।

मालवामें विजय प्राप्त कर वह राजकुमार जयसिंहके साथ चित्तौड़के बहुत पास औरंगजेबके अजीम नामक पुत्रसे लड़ने गया। इस लड़ाईमें मेवाड़के वीरोंने राठौड़ और खीची † वीरोंकी सहायतासे अजीमकी सेनाको खूबही मारा काटा जिससे अन्तमें वह हार गई। हारकर अजीम रणथम्भोरकी ओर भागा। पर उस नगरमें स्थान पानेसे पहले उसे बड़ी हानि उठानी पड़ी थी; क्योंकि विजयी राजपूतोंने उसका पीछा करके उसके बहुतसे सैनिकोंको नष्ट कर डाला था। जिस अजीमने इससे एक वर्ष पहले सहसा आक्रमण करके चित्तौड़नगर पर अधिकार कर लिया था आज उसे उसका पूरा बदला मिला। परन्तु इतने पर भी राणा राजसिंहकी बदला लेनेकी प्यास नहीं बुझी। जिस दुष्टने उनके असंख्य हिन्दू भाइयोंको कष्ट पहुंचाया था, स्वर्गभूमि मेवाड़को श्मशान कर डाला था, पवित्र सनातनधर्म्मको पांवों तले रौंदा था, जबतक उसका एक भी सैनिक मेवाड़में रहता तबतक राणाजी कैसे निश्चिन्त हो सकते थे? उन्होंने मेवाड़से मुगलसेनाके पांव एकदम उखाड़ देनेका सङ्कल्प किया और थोड़े ही समयमें इस सङ्कल्पका साधन कर कुछ दिनोंके लिये शान्ति प्राप्त की। परन्तु वह शान्ति बहुत दिनों तक नहीं रही, क्योंकि शीघ्र ही उनको मारवाड़के नाबालिग राजा अजितसिंहके पक्षमें मुगलोंके विरुद्ध तलवार उठानी पड़ी।

जिस दिन धार्म्मिकवर यशोवन्तसिंहकी औरङ्गजेबने हत्या कराई, जिस दिन पिताके शोकसे आकुल बालक अजितसिंहके कैद करनेका उस दुष्टने उद्योग

† उक्त सहकारी वीरोंकी नामावली यह है,— मखम और गंगा शक्तावत; सालुम्ब्राधिपति रत्न चूंडावत; सादरीके झाला चन्द्रसेन; बेदलाके सबलसिंह चौहान; बिजोलीके बर्सल पँवार। लड़ाईसे पहले इनमेंसे चार वीरोंने वक्तृता देकर अपने सैनिकोंको उत्साहित किया था।

किया, उसी दिन राठौड़ रानीने मारवाड़राज्यके शासनका भार अपने ऊपर लिया। उसी दिनसे वह अपने पुत्रके स्वत्वकी रक्षा करनेके लिये बहुत सावधानी और बुद्धिमानीसे राज्यकार्य चलाने लगी। कितने ही समयोंमें कितनी ही कठोर विपत्तियोंका उसे सामना करना पड़ा, कितने ही अवसरों पर उसे घोर सङ्कटोंमें पड़ना पड़ा, पर अपनी बुद्धिमानी और दक्षतासे वह समस्त विघ्नों विपत्तियों और सङ्कटोंके बाहर निकलती गई। केवल इतना ही नहीं, बल्कि बहुतसे खोये हुए विभवको उसने शत्रुओंके ग्राससे छुड़ाया। वह वीरपत्नी थी, वीरवर बप्पारावल के पवित्र वंशमें उत्पन्न हुई थी, वीर स्त्रियोंके जो उत्तमोत्तम गुण हैं उन सबोंसे वह विभूषित थी। बहुत दिनोंतक उन्हीं अच्छे गुणोंकी सहायतासे वह अपने पुत्रके स्वार्थको पूरी तरह रक्षा कर सकी थी, परन्तु इस बार क्रूर औरङ्गजेबने उसके विरुद्ध ऐसी कठोर काररवाई आरम्भ की कि उसका मुकाबला करना रानीके लिये बिलकुल असम्भव हो गया। तब राणा राजसिंह मेवाड़ और मारवाड़की सेनाओंको एकत्र करके गोहार राज्यके प्रधान नगर गानोड़के अधिकारीसे युद्ध करनेको चले। राजकुमार भीम इस संयुक्त राठौड़ और सीसोदीय सेनादलको लेकर अकबर और तिबरखांके मुकाबलेमें पहुंचा। बहुत शीघ्र दोनों दलोंमें लड़ाई प्रारम्भ हो गई। मुगलसेना युद्धनिपुण राजपूतोंकी बराबरी नहीं कर सकी। वह पराजित हुई। कहा जाता है कि एक चतुर राजपूतकी एक अपूर्व चतुराईसे यह विजय प्राप्त हुई थी। राजपूत सेनापतिने मुगलसेनामेंसे पांचसौ ऊँट पकड़वा मंगवाकर उनकी पीठोंपर बलती हुई मशालें बांध दीं और रातके समय उनको छोड़ दिया। रातके अन्धकारमें दूरपर बहुतसी मशालें बलती देखकर मुगलसैनिक बहुत शङ्कित हुए और इधर उधर उन्होंने भागना आरम्भ किया। यह सुयोग पा राजपूतोंने आक्रमण करके उनको पराजित कर दिया।

औरङ्गजेबका कोई मतलब नहीं निकला। बहुत कुछ सुयोग और सहायता रहते भी वह किसी प्रकार राणा राजसिंहको वशमें न कर सका। लगातार कई युद्धोंमें उसे पराजित करके वीरवर राणा राजसिंह तथा उनके सहकारी और मित्र राजपूत राजाओं तथा सरदारोंने उसे पदच्युत करके उसकी गद्दीपर उसके पुत्र अकबरके बैठानेका विचार किया और चुपचाप अकबरको इस बातसे सूचित किया।

परम धार्मिक वृद्ध पिता शाहजहांको पदच्युत करके पितृद्रोही औरङ्गजेबने संसार के सामने जो नीच उदाहरण उपस्थित किया था शाहजादा अकबर उस उदाहरण का अनुकरण करनेका सुयोग त्याग न सका; अतएव बड़ी प्रसन्नतासे राजपूतोंका प्रस्ताव उसने स्वीकार किया और इस कार्यके शीघ्र कर डालनेका सबसे अनुरोध किया। बहुत शीघ्र राजपूतवीर लोग दलबलके सहित उससे जा मिले। ज्योतिषी ने आकर उसके गद्दीपर बैठनेका दिन भी नियत कर दिया; और सब प्रबन्ध भी धीरे धीरे होने लगे। पर खास अकबरकी असावधानी और अविचारके कारण सब प्रकारके प्रबन्ध निष्फल हो गये; उसका और राजपूतोंका उद्योग व्यर्थ हो गया। जिस चतुराई और तीक्ष्ण बुद्धिको औरङ्गजेब सब बातोंमें काममें लाता था यदि अकबर वैसी थोड़ी सावधानीसे भी काम लेता तो उसका सब मतलब अवश्य सध जाता और वह जान सकता कि जिस ज्योतिषीने उसके गद्दीपर बैठनेका दिन नियत किया था वह क्रूर कपटी और विश्वासघातक था! उस कपटी ज्योतिषीने जब देखा कि शाहजादे अकबरके राज्याभिषेकका सब प्रबन्ध हो गया और उसको तख़्त पर बिठानेका उद्योग किया जा रहा है तब उसने जाकर सब बातें औरंगजेबसे कह दीं। उस सङ्कटके समयमें अपनी अवस्था पर एकबार औरंगजेबने विचार किया। विचार करनेसे उसे मालूम हुआ कि वह अकेला है; शरीररक्षकोंके सिवा उसका कोई सहायक वहां वर्त्तमान नहीं है; मुअज्जम और अजीम बहुत दूरपर हैं; इधर अकबर बहुत पास है—अजमेरसे केवल एक दिनके रास्तेपर है। तब ऐसी अवस्थामें क्या उपाय था? ऐसा कोई वीर पुरुष भी उस समय औरंगजेबके पास नहीं था जो खुलाखुली अकबरका मुकाबला कर सकता। तो वह क्या करता? एक दिनसे अधिक समय भी नहीं था। ऐसे सङ्कटमें एक दिन एक क्षणके बराबर उसे मालूम होने लगा। उस एक दिनके एक क्षणको व्यर्थ काममें खराब न करके चतुर औरंगजेबने बचावका उपाय सोचना आरम्भ किया। उपाय सूझ गया। वह बड़ा ही अच्छा था; उससे कुछ भी खून खराबी नहीं हुई और सहजमें औरंगजेबका बचाव हो गया। उसने अकबरके नाम एक बनावटी पत्र लिखा और एक जासूसको आज्ञा दी कि इस पत्रको ले जाकर चुपचाप राजपूत सरदार दुर्गादासके खेमेमें डाल आओ। राजपूतोंके मनमें अक

बरके विषयमें सन्देह पैदा करनेके ही लिये यह पत्र लिखा गया था। सो चतुर औरंगजेबने छल और कौशलसे अपना मतलब निकाला। उस पत्रमें अकबरकी बुद्धिमानीकी प्रशंसा करते हुए उसने लिखा—"बेटा! तुम्हारी इस चालाकीकी खबर पाकर मैं बहुत खुश हुआ। पर खूब होशियार रहना। राजपूतोंको हमारी इन काररवाइयोंका जरा भी शुबहा न होने पाये। जब जंग शुरू हो जाय तब तुम राजपूतों पर इस तरह टूटना कि उनमेंसे एक भी जिन्दा न बचे। बस, फिर हमारी फतह है।" ऐसे ही छलसे शेरशाहने राजपूत मालदेवसे अपने प्राण बचाये थे और जिस समयका हाल हम लिख रहे हैं उस जमानेमें महाराष्ट्रवीर शिवाजीके विरुद्ध भी यही नीति काममें लाई गई थी।

औरंगजेबका बनावटी पत्र दुर्गादासके* हाथ पड़ा। अकबरके नाम सिरनामा और औरङ्गजेबकी मुहर देखते ही उनको सन्देह हुआ। मुहर तोड़कर उन्होंने पत्रको आद्योपान्त पढ़ा। सब बातें उनको स्पष्टही मालूम हुईं। औरङ्गजेबकी चतुराई न जानकर उन्होंने पत्रको सच्चा समझा। जिस अकबरको बादशाह बनाने के लिये उन्होंने इतना प्रबन्ध किया था, क्या उसने धोखा दिया? क्या ऐसे पत्र पर विश्वास किया जा सकता है?—पर दुर्गादासने उसपर विश्वास किया; क्योंकि वे जानते थे कि चतुरता और विश्वासघातकता मुगलोंके कुलकी रीति है; अकबर भी मुगल था; अतएव दुर्गादासने मनमें सोचा कि उसका भी विश्वासघात करना कुछ आश्चर्यकी बात नहीं है। बड़े ही दुःखके साथ मुगलोंको बारम्बार धिक्कारते हुए उन्होंने अपनी सेना हटा ली।

राजपूतोंके विचारके इतनी जल्दी बदल जानेका कारण अकबरकी समझमें

* टाड साहबको दुर्गादासका एक चित्र मिला था। यह राठौड़वीर लूनी नदीके किनारे ढुनार नामक स्थानका राजा था। इसीने बालक अजितसिंहको अत्याचारी औरंगजेबके ग्राससे बचाकर नाबालिगीके समयमें उसकी रक्षा की थी और स्वदेशकी स्वाधीनता पुनः प्राप्त करनेके लिये अनगिनत बार शत्रुओंसे युद्ध किया था। जब यह अकबरको संकटसे छुड़ाकर ले जा रहा था तब अजीम इसे चालीस हजार अशर्फियां घूस देना चाहता था; पर इस तेजस्वी वीरने घृणाके साथ घूस लेना अस्वीकार किया था।

नहीं आया। अपने भाग्यको चिन्ता कर वह बहुत शोक करने लगा। उसके विश्वासी सेनापति तिवरखांको भी बहुत ही दुःख हुआ। तिवरखांकी बड़ी इच्छा थी कि अकबर बादशाह हो जाय; आज सब प्रबन्ध हो जाने पर भी उसकी यह इच्छा पूरी नहीं हुई; अतएव उसके दुःखका ठिकाना न रहा और दुःखके बाद निराशताने उसे घेरा। आखिर अकबरको तख्त पर बिठानेके लिये वह चुपचाप औरंगजेबको मार डालनेका उद्योग करने लगा; पर उसका उद्योग सफल नहीं हुआ, बल्कि इसी उद्योगमें उसके प्राण चले गये। इधर औरंगजेबकी चतुराई प्रकट होनेसे पहले मुअज्जम और अजीम उसके पास पहुंच गये। तब उसे किसी बातका डर न रहा। अकबर बहुत भयाकुल हो राजपूतोंकी शरणमें गया। राजपूतोंको औरंगजेबकी चतुराई मालूम हो गई थी, अतएव उन्होंने अकबरकी रक्षा करनेमें आगापीछा नहीं किया। पर अकबर किसी तरह निश्चिन्त न हो सका;—वह जहां जाता वहीं उसे जान पड़ता कि पिताके क्रोधकी चिनगारियां उसपर गिर रही हैं। वह अपने पिताकी कठोरताको खूब अच्छी तरह समझता था। उसकी कठोरताकी बातें वह ज्यों ज्यों विचारता गया त्यों त्यों उसका डर बढ़ता गया। अन्तमें यह सोचकर कि निकट रहनेमें बचाव नहीं हो सकता उसने दूर भाग जाना निश्चित किया। राठौड़वीर दुर्गादासने उसकी बहुत घबराहट देखकर ५०० सवारोंके साथ उसे पालरगढ़ नामक स्थानमें महाराष्ट्र नायक शम्भाजीके पास पहुंचवा दिया। मेवाड़ और डूंगरपुरके दर्रोंसे होता हुआ नर्मदा पारकर वह उक्त स्थानमें पहुंचा। रास्तेमें उसे किसी प्रकारकी रुकावटका सामना करना नहीं पड़ा। पालरगढ़में कुछ दिन रहनेके बाद एक विलायती जहाज पर सवार होकर वह फारस चला गया।

आर्म साहब लिखते हैं कि "भाई शुजाकी आत्माको पठानोंके बीच देखकर औरङ्गजेब जैसा चिन्तित हुआ था वैसी ही चिन्ता उसे अकबरके भागकर शम्भाजीके पास जानेकी खबर सुनकर हुई। विशेष चिन्ता उसे अकबर और राजपूतोंमें मैत्री हो जानेके कारण हुई। यदि उसे सदा राजपूतोंसे युद्ध करते रहना पड़ता तौभी वह इतना न घबराता जितना इस बातसे घबराया। राजपूतोंने उसे जानसे मार डालनेका नहीं किन्तु पदच्युत करनेका उद्योग किया था। आज उन्हीं राज-

पूतोंको अकबरसे मिलते देखकर उसे बड़ी शङ्का हुई। वह चाहता था कि राजपूतोंसे सन्धि हो जाय; पर अपने उच्च पदका ख्यालकर स्वयं सन्धिकी प्रार्थना नहीं कर सकता था। सिपहसालार दिलेरखांके अधीनके एक बुद्धिमान् राजपूतने बहुत अच्छे ढङ्गसे सन्धिका प्रबन्ध कर दिया। एक तरह उसीने औरङ्गजेबको वर्त्तमान सङ्कटसे बचाया। घर जानेके बहानेसे सेनामेंसे निकलकर रास्तेमें शिष्टाचार की रीति पर उसने राणाजीसे मुलाकात की। दोनोंमें बहुत देरतक अनेक विषयोंकी बातें होती रहीं। बात ही बातमें लड़ाई झगड़ोंका वृत्तान्त चल पड़ा। राजपूत सैनिकने इसके लिये बहुत दुःख प्रकट किया; और मालूम होता है कि उसका दुःख प्रकट करना बनावटी नहीं था। इसके बाद उसने राणाजीसे कहा कि 'यद्यपि औरङ्गजेब स्वयं सन्धिकी प्रार्थना नहीं करेगा, तौभी सन्धिकी बात यदि उठाई जाय तो वह उसे स्वीकार कर लेगा।' इसपर राणाजीने उससे कहा कि "अच्छा, तुम मेरी ओरसे बादशाहसे सन्धिका प्रस्ताव करो।"— मेवाड़के भट्टकवियोंकी लिखावटसे आर्म साहबकी लिखावट मिलती है। भट्टकवियोंने उस मध्यस्थ राजपूतको बीकानेरनरेश राजा श्यामसिंह बतलाया है।

श्यामसिंहसे राणाजीके मनका हाल जानकर चतुर औरङ्गजेब अपनी स्वाभाविक चतुराईके अनुसार कार्य करनेमें नहीं चूका। यह जानकर उसे अपना मतलब निकालनेका बहुत अच्छा मौका मिल गया कि राणाजी सन्धि करनेको राजी हैं। यह अवसर पा आजकल करके वह उनको तो लड़ाईका प्रबन्ध करनेसे रोकता और स्वयं भीतर ही भीतर सेना संग्रह करता गया। धीरे धीरे बरसात आ गई; अतएव राणा राजसिंहको आपही लड़ाईका प्रबन्ध रोकना पड़ा। बरसात बीतने पर औरङ्गजेब सेनाके सहित उनपर चढ़ाई करनेके योग्य हो गया। पर सन्धि हो गई। इस सन्धिके विषयमें विद्वद्वर आर्म साहबने लिखा है कि "दुःखकी बात है कि सन्धिपत्रमें मुण्डकरके उठा देनेकी बात ही नहीं थी, बल्कि उसका उसमें जिक्र ही नहीं था। उसमें केवल इतना लिखा था कि राणाजी चित्तौड़के सब जिले पुनः प्राप्त करेंगे। जोधपुरका भी उसमें उल्लेख था।" आर्म साहबने किस स्पष्टतासे वह सब वृत्तान्त लिखा है सो सन्धिपत्रका अनुवाद देखनेसे पाठकोंको मालूम होगा। परन्तु वह वृत्तान्त राणा राजसिंहके उत्तराधिकारी जयसिंहके

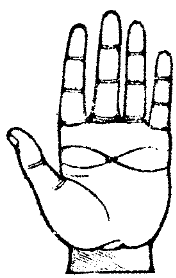
समयका है; अतएव इस जगह उसकी समालोचना करना उचित नहीं जान प् पड़ता; क्योंकि सन्धि होते न होते ही राणा राजसिंहका देहान्त हो गया *। राज गद्दीपर बैठनेके बादहीसे बराबर मुगलोंसे युद्ध करते रहनेके कारण उनके शरीर में बहुतसे गहरे घाव हो गये थे। उन्हीं घावोंके कारण अन्तमें उनका स्वास्थ्य बहुत बिगड़ गया। एक तो वे चिन्तासे कमजोर होही रहे थे तिसपर घावोंका कष्ट था। अस्तु, सब कष्टोंसे छुटकारा पाकर स्वर्गसिंहासन पर वे अपने प्रातःस्मरणीय पूर्वजोंकी मण्डलीमें जा विराजे।

---

* औरङ्गजेबके साथ शूरसिंह (राणा राजसिंहके चचा) और नरहर भट्टकी सन्धि का वृत्तान्त,—

"श्रीमान्‌के अभिलाषा करने और बुलानेके अनुसार श्रीमान्‌के ये दो सेवक राणाजीके ओरसे नीचे लिखे प्रस्तावोंको निवेदन करनेके लिये श्रीमान्‌के समीप आये हैं। भरोसा है कि इन प्रस्तावोंको तथा उनको जिन्हें पद्मसिंह इनके बाद निवेदन करेंगे श्रीमान् स्वीकार करेंगे।

"मञ्जूरी" शब्दके सहित औरङ्गजेबके पञ्जेका निशान।



"मञ्जूरी"

प्रथम।—चित्तौड़के तथा उससे सटे हुए आसपासके सब जिले वापस मिलें।

द्वितीय।—हिन्दूधर्मसे सम्बन्ध रखनेवाले अनेक भवनों और देवमन्दिरोंको तोड़कर मस्जिदें बनाई गई हैं। जो बात हो गई वह पलट नहीं सकती; पर भविष्यमें ऐसा न हो।

तृतीय।—अबतक राणाजी सहायतामें बादशाहको जो कुछ देते आये हैं वह बराबर देते रहेंगे; पर इससे अधिक सहायता न मांगी जाय।

चतुर्थ।—हमलोगोंको भरोसा है कि स्वर्गवासी राजा यशोवन्तसिंहके पुत्र

जिस दिन हिन्दूकुलसूर्य वीरवर महाराणा प्रतापसिंह स्वदेशप्रेम और संन्यास-धर्मका अद्भुत परिचय देकर इस संसारसे बिदा हुए उस दिन मेवाड़भूमिमें जो गहरी अँधियारी छाई उसे अमर, कर्ण या जगत्सिंह कोई दूर नहीं कर सका; पर वीरवर राणा राजसिंहने अपनी अद्भुत वीरता और स्वदेशप्रेमिकता से उस अन्धकार को बिलकुल दूर करके मेवाड़का गौरव पुनः स्थापित किया। जिस परिश्रम, उद्योग और वीरत्वसे वे औरङ्गजेबके विरुद्ध लड़े थे उससे उनके स्वदेशप्रेमका स्पष्ट परिचय मिलता है। राजसिंह वीरोत्तम प्रतापसिंहके उपयुक्त वंशधर थे; इसीसे भारतकी उस भीषण गड़बड़के समय दलित दुःखित और उत्पीड़ित भारतवासियों के उद्धारके लिये उन्होंने जबर्दस्त मुगलबादशाहसे लड़ाई ठानी थी। भारतवर्षके उस अधःपतनके समय यदि वे उत्पन्न न होते तो कदाचित् हिन्दूजाति और सनातनहिन्दूधर्मका एकदम नाश हो जाता। उनके पवित्र चरित्रसे औरङ्गजेबके चरित्र की किसी तरह बराबरी नहीं की जा सकती। दोनोंके चरित्रोंका मिलान करना अन्याय है; क्योंकि दोनोंमें बड़ा भारी अन्तर था। एशिया भरमें जितने राजाओं ने जन्म लिया उनमें कोई औरंगजेबकी भांति गहरे पापकूपमें नहीं डूबा, कोई उसकी भांति जन्म भर पशुओंकासा आचरण करता नहीं रहा। दूसरेके जीवनकी परवा न करना उसके जातिभाइयोंका मुख्य धर्म था; — वह इस धर्मपर पूरी तरह चला। उसका हृदय इतना कठोर था कि विजय प्राप्त करनेपर भी उसने कभी किसी पर कृपा नहीं की। यहांतक कि बिलकुल वशमें आ गये हुए शत्रुसे

और आश्रित लोग अपना अपना कार्य सम्हालनेके योग्य होने पर अपना राज्य पुनः पावेंगे। (क)

आत्ममर्यादाके विचारसे हम छोटी छोटी मांगें नहीं कर सकते। सूर्यकी किरणोंकी तरह आपके भाग्यकी ज्योति सदा बढ़ती रहे और अस्त न हो।

आपके सेवकों शूरसिंह और नरहर भट्टकी अर्जी।"

संवत् १७३७, वैक्रमीय; सन् १६८१ ई० में राणाजी स्वर्गवासी हुए।

(क) राणा राजसिंहने मारवाड़के राजपुत्र अजितसिंहके स्वार्थकी रक्षा और मुण्डकरका विरोध करनेके लिये लड़ाईपर कमर कसी थी। अजित उस समय भी राणाजीकी रक्षामें रहा था।

भी वह बदला लेनेमें न चूकता ! उसके ऐसे अत्याचारोंका एक उदाहरण गोलकुण्डानरेशके साथ उसका अनुचित बर्ताव है । पर संसारप्रेमिक राणा राजसिंहके और उसके चरित्रमें कितना अन्तर है ! जिस अत्याचारीने हृदयको पत्थर जैसा कठोर कर उनका अनिष्ट करनेमें तनिक भी त्रुटि नहीं की, दयावान् राजसिंहने उसे असंख्य बार क्षमा किया । उनका हृदय दया, कृपा, क्षमा आदि पवित्र गुणोंसे भूषित था; इसीसे अत्याचारी शत्रुने उनसे क्षमा पाई थी । यदि वे चाहते तो औरंगजेबको दलबलके सहित नष्ट कर सकते, पर उस अत्याचारी तथा उसकी जातिके लोगोंके भविष्यत् दुःखका विचार कर विजय मिलनेके समय भी उन्होंने अपने पुत्र जयसिंहको लड़ाईके मैदानसे बुला लिया । अपने देशकी रक्षाके लिये एक युद्धकुशल सेनापति और तेजस्वी वीरकी भांति उन्होंने जो अद्भुत युद्धकुशलता और वीरता दिखाई उसके लिये उनकी प्रशंसा अनन्त कालतक होगी । विशेषकर दुःखमें पड़ी हुई प्रभावतीका उद्धार करके उन्होंने जिस वीरत्व और महत्वका परिचय दिया था उसका जोड़ संसारमें कहीं नहीं मिलेगा । वे एक बड़े भारी विद्वान् और हितैषी राजा थे, इस बातका प्रमाण तो उनकी वह पत्रिका ही है जो उन्होंने औरङ्गजेबके नाम लिखी थी । उस पत्रिकासे उनकी जो लेखकुशलता और उदारहृदयता प्रकट होती है उससे हम कह सकते हैं कि उनका नाम बड़े नीतिज्ञ और विद्वान् महात्माओंकी नामावलीमें संयुक्त करनेके योग्य है । इसके अतिरिक्त वे शिल्पके बड़े प्रेमी थे; इसका दृढ़ प्रमाण उनका खुदाया हुआ लम्बा चौड़ा 'राजसमुन्द' सरोवर ही है । राजसमुन्द झीलके बननेका कारण और उसके सम्बन्धकी सब बातें नीचे वर्णन करके हम मेवाड़के इतिहासके इस ज्योतिर्मय अध्यायको समाप्त करेंगे ।

राजसमुन्द झील ।—महान् जातीय कार्य और राजपूतकीर्त्तिका प्रबल प्रमाण यह राजसमुन्द झील राजधानीसे साढ़े बारह कोस उत्तर अरावलीके तलसे एक कोसके अन्तर पर है । गोमती नामकी एक पहाड़ी छोटी नदीका बहाव बांधके द्वारा रोककर यह झील बनाई गई । राणाजीने अपने नामके अनुसार इसका नाम "राजसमुद्र" (राजसमुन्द) रखा । उत्तरपश्चिम और उत्तरपूर्व छोड़कर इसके हर ओर उच्च बांध है । झील बहुत ही गहरी है और उसका घिराव प्रायः छः

कोस है। बांध एक सिरेसे दूसरे सिरेतक बिलकुल सफेद सङ्गमर्मरका है। उसके सबसे ऊपरके हिस्सेसे झीलके गर्भतक बराबर सीढ़ियां बनी हैं और चारों ओर सीढ़ियां हैं। वे सब सङ्गमर्मरकी हैं। बांधके चारों ओर मट्टीके ऊँचे ढूहे हैं। यदि राणा राजसिंह कुछ दिन और जीवित रहते तो मट्टीका उक्त ढूहा या दीवार सुन्दर हरेभरे वृक्षोंसे सुशोभित हो जाती। झीलके दक्षिण ओर राणाजीने एक नगर बसाया और दुर्ग बनवाया। नगर उन्हींके नामके अनुसार "राजनगर" नामसे प्रसिद्ध हुआ। बांधके ऊपर श्रीकृष्णका एक सुन्दर मन्दिर है; वह भी सङ्गमर्मरका है। इसके तथा बांधके सब अङ्गोंमें उस समयकी पसन्दके योग्य अच्छे अच्छे चित्र खुदे हुए हैं। एक जगह बड़े और साफ अक्षरोंमें बनानेवालेके वंशका हाल खुदा है। इस झीलके बनवानेमें ८६ लाख रुपये खर्च हुए थे। इनमेंसे बहुतसे रुपये उनकी प्रजा तथा धनाढ्य सरदारमण्डलीने दिये थे। मसाले पासके पर्वतोंसे इकट्ठे किये गये थे। सङ्गमर्मरकी जो असंख्य शिलाएँ लगी थीं वे यदि खरीदनी पड़तीं तो उनके लिये नहीं मालूम कितने रुपये खर्च हो जाते। पर मेवाड़की भूमि रत्नगर्भा है; वहांके पर्वतोंसे ऐसी कितनी ही शिलाएँ मिल सकती हैं। इसमें सन्देह नहीं कि राजसमुन्द्र झीलकी शोभा, उसके बहुत खर्चसे बनने, इत्यादिसे उसके सौन्दर्यका परिचय मिलता है; परन्तु जिस कारणसे यह झील बनी उस कारणके जाननेसे इसका वह भीतरी सौन्दर्य प्रकट होता है जिसकी बराबरी संसारका कोई सौन्दर्य नहीं कर सकता। वह कारण बड़ा हितपूर्ण है। राणा राजसिंहके शासनसमयमें मेवाड़में भयानक दुर्भिक्ष और महामारीका बड़ा जोर हुआ; उस समय कितनी ही दीन हीन प्रजाएँ भूख प्यासके मारे मरने लगीं। प्रजाकी दुर्दशामें देख राणाजी बड़े दुःखित हुए † और इसलिये कि प्रजाओंको दुर्भिक्षसे छुटकारा मिले, सर्वसाधारणका बड़ा उपकार हो, तथा देशमें

---

† "रञ्जनात् खलु राजत्वं प्रजानां पालनादपि" अर्थात् "प्रजाको प्रसन्न रखना, विशेषकर प्रजाका पालन करना, राजापन है।"—जो राजा प्रजाका रक्षण नहीं कर सकता वह राजा नामके योग्य नहीं। राणा राजसिंह योग्य राजा थे। राजा राजमन्त्री आदिका क्या धर्म है यदि यह जाननेकी इच्छा हो तो हमारी लिखी "देशीराज्य" पुस्तक देखिये। मूल्य दो आना।

कीर्त्ति सदा बनी रहे, ऐसा कोई कार्य करनेका उन्होंने निश्चय किया। राजसमुन्द झीलको बनवाकर उन्होंने अपने ऊपर लिखे तीनों उद्देश्योंको सफल और अपनी इच्छाको पूर्ण किया। यही राजसमुन्द झीलका संक्षिप्त इतिहास है।

मेवाड़की सुशोभित भूमि पर प्रकृति देवीकी बड़ी कृपा है; इसीसे देखा जाता है कि दूसरे किसी प्रदेशकी अपेक्षा वहां दुर्भिक्ष और महामारीका कम प्रकोप होता है। राजसिंहके सिंहासन पर बैठनेके सात वर्ष बाद संवत् १७१७ वैक्रमीय (सन् १६६१ ई०) में मेवाड़में दुर्भिक्ष और महामारीका इतना अधिक जोर हुआ जितना कभी नहीं हुआ था। "दुर्भिक्षपीड़ित प्रजाका असीम कष्ट देख मेवाड़के अधिपतिने एक ऐसी कीर्त्तिके स्थापन करनेका विचार किया जिससे प्रजाका पालन हो और कीर्त्ति सदा बनी रहे।" ऐसा विचारकर राणाजीने उक्त राजसमुन्द बनवाना निश्चित किया। ज्योतिषीकी सलाहके अनुसार पौष मासकी अष्टमी मङ्गलवारको हस्तनक्षत्रमें पहला पत्थर जमाया गया। "सात वर्षमें झील बनकर तैयार हुई। इसके बननेके प्रारम्भमें तथा बनकर तैयार होनेपर सोलहों उपचारोंसे देवताओंका पूजन किया गया था और अनेक प्रकारकी बलि चढ़ाई गई थी।"

"आषाढ़का महीना बीत गया तौभी एक बूंद जल नहीं गिरा। राणाजी कृपाप्रार्थना करनेके लिये चतुर्भुजा देवीके मन्दिरको गये। पर किसी प्रकार कुछ न हुआ। इसी भांति सावन और भादोंके महीने भी बीत गये और इन्द्रदेवकी कृपा न हुई। पानीके न मिलनेसे सारा देश निराश हो गया और प्रजाएँ भूख प्याससे छटपटाने लगीं। जो चीजें खानेकी कभी नहीं समझी गई थीं उनको लोग खाने लगे। पतिने स्त्रीको छोड़ा और स्त्री पतिको छोड़कर इधर उधर भागी। माता पिता बच्चोंको बेचने लगे। अनर्थ बढ़ता गया। दुर्दशा और भयङ्करताके हाथ दूर दूर तक फैले; यहांतक कि कीड़े मकोड़े खाने बिना मरने लगे। हजारों स्त्री पुरुष बालक बालिका युवा वृद्धके प्राण भूख प्यासके कारण नष्ट होने लगे। जिनको एक दिनका भोजन मिला, उन्होंने उसे दो दिन चलाया। पश्चिमकी ओरसे एक प्रकारकी तेज हवा बहने लगी; उसमें ऐसा असर था जिससे लोग मरते थे। प्रायः हर रातको राशिचक्र और तरह तरहके सितारे आकाशमें दिखाई देते थे। दि-

नमें बादलोंकी सूरत भी दिखाई नहीं देती थी और बिजलीका चमकना तथा मेघोंका गड़गड़ाना तो लोग एकदम भूल ही गये थे। इन बुरे लक्षणोंको देखकर लोगोंमें बड़ी घबराहट फैली। नदनदी, सरोवर, झरने, सोते, सब सूख गये थे! धनवान् लोग नाप नाप (तौल तौल) कर भोजनकी चीजें बांटने लगे। जातिभेद न रहा; ब्राह्मण शूद्र पहचानना कठिन हो गया। वीरता, ज्ञान, गौरव, जाति, वर्ण, सब छूटे। किसी तरह पेट भरना ही लोग सोच समझने लगे। चारों वर्णोंने कुछ दिनोंके लिये भेद छोड़ दिया। केवल भूख भूखकी धुन थी। फल, फूल, पेड़ोंके पत्ते, छाल तक लोग खाने लगे; यहांतक कि मनुष्यने मनुष्यको खाया! धार्म्मिक लोग अपना धर्म भूल गये। नगर, कस्बे, गांव सब खाली हो गये! बीजके अभावसे वंश नष्ट हुए। मछलियां समाप्त हो गईं। सबकी आशाएँ मिट गईं *।"

संवत् १७१७ वि० (सन् १६६१ ई०) के भयङ्कर दुर्भिक्ष और महामारीका रोंगटे खड़ा करानेवाला वृत्तान्त संक्षेपमें ऊपर प्रकाशित किया गया। जिस समय मेवाड़की ऐसी दशा थी उसी समय दुष्ट औरङ्गजेबने लड़ाईकी आग भड़काई थी। पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि उसके अत्यन्त कठोर अत्याचारोंसे दुर्भिक्षपीड़ित मेवाड़की दुर्दशा सौगुनी बढ़ गई होगी। पर इस पैशाचिक अत्याचारका उसे उचित फल मिल गया। इतिहासमें औरङ्गजेबका नाम मुगल कुलको कलङ्कित करनेवाला लिखा है; उसके वंशधरोंके हाथसे उसके पूर्वजोंका साम्राज्य निकल गया है। संसारमें किसीका गौरव चिरस्थायी नहीं होता।

तेरहवां अध्याय।

राणा जयसिंह;—उनसे तथा उनके यमज भाईसे सम्बन्ध रखनेवाली एक कहानी;— राणा और शाहजादे अजीमकी मुलाकात और बातचीत;— सन्धि होना;—सन्धिका टूटना;—राणाजीका 'जयसमुन्द' झील बनवाना;—घराउ झगड़े;—युवराज अमरसिंहका विद्रोही हो जाना;—राणाजीकी मृत्यु;—अमरसिंहका गद्दीपर बैठना;—औरंगजेबके उत्तराधिकारी और उनके बीच सन्धि होना;

* "राजविलास"से संगृहीत।

—उस समयकी घटनाओंपर विचार;—मुचलका लगाया जाना;—मुगल-साम्राज्य से राजपूतोंका स्वतन्त्र होना;—इसका कारण;—औरंगजेबकी मृत्यु;—बादशाहतके कारण लड़ाई झगड़े;—बहादुरशाहका तख्त पर बैठना;—सिखोंका स्वाधीनता प्रकट करना;—मेवाड़, मारवाड़ और अम्बर राज्योंमें एकता होना;—फिर इनमें वैर आरम्भ होना;—बहादुरशाहकी मृत्यु;—फुर्रुखशेरका बादशाहत पाना;—मारवाड़की राजकुमारीसे उसका विवाह;—भारतमें अंगरेजी प्रधानता का प्रारम्भ;—बादशाह और राणाजीके बीच सन्धि;—जाटोंका स्वाधीनता प्रकट करना;—राणा अमरसिंहका परलोकवास;—उनके चरित्रकी समालोचना।

राजपूतकुलभूषण वीरवर राणा राजसिंह समग्र राजस्थानको शोकरूपी घोर अन्धकारमें छोड़कर असमयमें इस संसारसे चले गये। उनके स्वर्गवासके बाद संवत् १७३७ वैक्रमीय (सन् १६८१ ई०) में उनके द्वितीय पुत्र जयसिंह मेवाड़की गद्दीपर बैठे। जयसिंहके जन्मसमयमें एक ऐसी घटना हुई थी जिसका वृत्तान्त पढ़नेसे राजपूतोंके एक प्रसिद्ध आचारव्यवहारका हाल मालूम होता है। बहुतही आवश्यक समझकर हम उस वृत्तान्तका इस जगह वर्णन करते हैं। जयसिंहका जन्म होनेके केवल कई घण्टे पहले उनकी विमाताके गर्भसे भीम नामक एक बच्चा जन्मा था। यह नियम है कि नया बच्चा पैदा होनेपर राजपूत पिता बच्चेकी बांहमें "अमरदूब" नामक शरीरको स्वस्थ और गर्म रखनेवाली एक प्रकारकी घास बांध देते हैं। इस नियमके अनुसार राणाजी घास बांधनेका प्रबन्ध करने लगे। पर छोटे पुत्रकी मांके साथ अधिक प्रेम होनेके कारण उन्होंने उसीकी बांहके साथ "अमरदूब" को बांधा। राणाजीने यह कार्य इस ढंगसे किया जिससे दूसरोंने समझा कि भूलकर उन्होंने ऐसा किया; पर वास्तवमें यह बात नहीं थी; अर्थात् राणाजीने जान बूझकर ऐसा किया था। अस्तु, धीरे धीरे दोनों बच्चे बड़े हुए। छोटेके ऊपर पिताको अधिक कृपा देख कदाचित् बड़ेको कुछ डाह हो, यह विचारकर एक दिन राणाजीने भीमसिंहको बुला और उसके हाथमें नङ्गी तलवार देकर गम्भीरताके साथ कहा—"यह नङ्गी तलवार ले जाओ और अभी अपने भाईको मार डालो; नहीं तो भविष्यमें राज्यमें बड़ी गड़बड़ फैलेगी।" उदारहृदय भी-

उन्होंने भीमकी पिताकी यह निष्कपट बात सुनकर तनिक भी आश्चर्य नहीं हुआ। वह समझ गया कि दुहरे संकटमें फंसे होनेके कारण बड़े दुःखसे राणाजीको ऐसी बात मुंहसे निकालनी पड़ी है। सो उस दुहरे संकटसे उनको बचानेके लिये उसने शान्त और स्थिर भावसे यह उत्तर दिया—"पिताजी! आप किसी बातकी शङ्का न करें। यह लीजिये—आपका सिंहासन छूकर शपथ करता हूं कि आजसे दुबारीमें एक बूंद जल भी मैं पीऊँ तो महाराणा राजसिंहका पुत्र नहीं।" पिता से बिदा होकर भीमने अपने सैनिकों और सरदारोंको बुलाया और उदयपुरसे प्रस्थान किया।

गर्मीका दिन था; दोपहर हो गई थी; सूर्यदेव बीच आकाशमें आ आग बरसा कर संसारको झुलसा रहे थे। समग्र प्रकृति स्थिर, गम्भीर और निश्चल थी। कहीं किसी पेड़का एक पत्ता भी नहीं हिलता था। उदयपुरके सामनेका दुबारी नामक पहाड़ी दर्रा सूर्यकी प्रचण्ड गर्मीके कारण मानों आगका कुण्ड बन रहा था। ऐसे समयमें भीमसिंह अपने साथी सवार सैनिकोंके सहित उस पथरीले पहाड़ी पथमें पहुंचे। और अधिक दूर न जाकर जरा आराम करनेके लिये सब पास के बड़के एक बड़े पेड़के नीचे घोड़ोंसे उतरे और भीमने एकबार जी भरके अपनी मातृभूमिकी ओर देखा; एक लम्बी सांस खींची; बड़ी बड़ी आंखोंसे दो बूंद आंसू टपक पड़े। उत्तराधिकारके सदाके नियमके अनुसार जिस प्रदेशका राज्य भीमसिंह स्वयं कर सकते थे आज अपरिचित और बेलगावकी तरह वे उस प्रदेशको छोड़कर चले! पर यह बात विचारकर तेजस्वी भीमको तनिक भी दुःख नहीं हुआ। वे जानते थे कि चाहे कैसा ही कठोर सङ्कट पड़े अपने बाहुबल और हृदयकी दृढ़तासे वे सब सङ्कटोंके बाहर निकल आवेंगे। इसी प्रकार निरुत्साह न होकर भीमने अपने मनको धैर्य्य धराया। वे बड़े प्यासे हो रहे थे। "पनेड़ी" से उन्होंने जल लानेको कहा। आज्ञा पाकर वह पासके किसी झरनेसे चांदीके कटोरे में जल भर लाया। भीमने जल पीनेके लिये कटोरा उठाया ही था कि सहसा रुक गये। सब जल उन्होंने कटोरा उलटकर गिरा दिया और कटोरेको दूर फेंक तथा बनदेवीको सम्बोधन कर कहा—"देवि! अपराध क्षमा करना। भूलकर मैं अपनी प्रतिज्ञा तोड़ने चला था। इस 'दुबारी' पहाड़ी रास्तेमें मुझे एक बूंद भी

जल पोनेका अधिकार नहीं है।" यह कहकर भीम घोड़ेपर सवार हुए और घोड़ेकी गर्दन थपथपाकर सवारों सरदारों सैनिकोंके सहित तेजीसे दुवारीके बाहर निकल गये। त्योंही पीछे धड़ाकेके साथ दर्रेका लोहेका विशाल फाटक बन्द हुआ। मातृभूमिसे निकलकर भीम बहादुरशाहके यहां गये। उसने आदरपूर्वक इनको साढ़ेतीन हजार सवारोंका अफसर बना दिया और सबके खर्चके लिये बावन जिले नियत कर दिये। परन्तु मुगल सेनापतिसे कुछ झगड़ा हो जानेके कारण थोड़े दिन बाद दलके सहित वे सिन्धुनदके पार भेजे गये; पर फिर काबुलसे न लौट सके; क्योंकि वहीं उनका देहान्त हो गया *।

अब हम पुनः राणा जयसिंहका हाल लिखते हैं। गद्दी पर बैठनेके कुछ ही दिन बाद उन्होंने औरंगजेबसे सन्धि की। शाहजादा अजीम और मुगलसेनापति दिलेरखां—ये दोनों सन्धिपत्र लेकर उनके पास गये। राणा जयसिंह १० हजार सवार और ४० हजार पैदल सैनिकोंके सहित मेवाड़के मैदानमें आगे बढ़कर उनका स्वागत करनेके लिये ठहरे। प्यारी मेवाड़भूमिको बहुत दिनोंके बाद देखनेकी इच्छासे मेवाड़के लोग बड़े आनन्दके साथ पहाड़ोंका निवास छोड़ नीचे भूमि पर आये। सबके मुख पर आशा उत्साह और आनन्दकी झलक दिखाई देती थी। जय और आनन्दको ध्वनिसे मानों पृथ्वीको कँपाते हुए वे उन मैदानोंमें जहां पहले बस्तियां थीं जाकर खड़े हुए। थोड़ी देरमें अजीम और दिलेरखां अपने कुछ शरीररक्षकोंके साथ वहां आ पहुंचे। उनको आते देखकर राजपूतोंने बड़े जोरके साथ "जय! जयसिंहकी जय!" की ध्वनि की। लाखों आदमियोंकी एकसाथ की हुई ध्वनि दूर दूर तक पहुंच गई। राणाजीने आदर और सम्मानके साथ अजीम तथा दिलेरखांका स्वागत किया। राणा राजसिंहने दिलेरखांके प्राण सङ्कटसे बचाये थे अतएव राणा जयसिंहके आगे वह बारम्बार कृतज्ञता प्रकट करने और स्वर्गीय राणा राजसिंहको धन्यवाद देने लगा। जयसिंहको बहुत बड़ी सेना

* भीमसिंहके वंशधर बुनेराके राजासे टाड साहबने यह सब वृत्तान्त सुना था। भीमसिंह शहसवार आदमी थे। घोड़ेको बड़ी ही तेजीसे दौड़ाकर उसकी पीठसे उछलकर वे पेड़ोंको डालोंसे झूल जाते थे। दुःखकी बात है कि ऐसी ही कसरत करनेमें उनकी मृत्यु हुई।

देखकर अजीम मनमें डरा; पर समझदार दिलेरखां राजपूतोंकी उच्चहृदयता और उदारता विचारकर कृतज्ञताके साथ प्रसन्न होता रहा। वह भली भांति जानता था कि वीरहृदय राजपूत कभी विश्वासघात नहीं करते; यदि शत्रु भी घरमें आ जाय तो उसके साथ भी वे बुरा बर्ताव नहीं करते। विशेषकर जिस जयसिंहने बदला लेनेकी पूरी शक्ति रहते भी कृपा करके उन सभोंको छोड़ दिया था वेही जयसिंह क्या आज घरमें आनेपर उनको कष्ट देते? यद्यपि कमसमझ अजीमने राजपूतों पर अविश्वास किया पर दिलेरखांको उनपर तनिक भी सन्देह नहीं हुआ; उसको राणाजीसे मिलकर बहुत प्रसन्नता हुई। सन्धि हो गई। अकबरके विद्रोही हो जाने पर राणाजीने उसे सहायता पहुंचाई थी; इसका उनको यह दण्ड मिला कि तीन जिलोंका अधिकार बादशाहके हाथमें छोड़ देना पड़ा। बादशाहकी आज्ञाके अनुसार अजीमने राणाजीसे यह भी कह दिया कि "अबसे आपको लाल रंगके खेमे और लाल छत्रका व्यवहार छोड़ना पड़ेगा।"— पर ये सब दण्ड नाममात्रके थे। केवल बादशाहका मान रखनेके लिये ये प्रस्ताव हुए थे। इनसे राणाजीको लाभ हुआ; क्योंकि दिलेरखांने अजीमको विश्वास दिलानेके लिये अपने पुत्रोंको जमानत (शरीरबन्धक) में उसके अधिकारमें छोड़ दिया था। जयसिंहके यहांसे जानेके समय दिलेरखांने उनसे जो बात कही थी वह बात हमारी ऊपरकी लिखावटका काफी प्रमाण देगी। बिदा होनेके समय दिलेरखांने जयसिंहसे नम्रतापूर्वक कहा था—"आपके सरदार कठोर हैं और मेरे पुत्र आपकी भलाईके लिये जमानत कर रहे हैं। पर यदि उनको जानके बदलेमें भी मैं आपके देशको पूरी तरह स्वतन्त्र कर सकूंगा तोभी ऐसा करनेमें न रुकूंगा। आप चित्त स्थिर रखें। आपके स्वर्गीय पिताजी मेरे बड़े मित्र थे।"

राजपूत मित्र दिलेरखांका उद्देश्य सफल नहीं हुआ। यद्यपि उसका उद्देश्य बहुत अच्छा था पर जो घटनाएँ होनेको होती हैं उनमें रुकावट डालना मनुष्यकी सामर्थ्यके बाहर है। दिलेरखां भी मनुष्य ही था; अतएव घटनाओंकी गति वह न रोक सका। उसका उद्देश्य सफल न होनेपर भी राणाजीको अपनी तलवारका भरोसा था। राजसिंहासन पर बैठनेके कुछ कम पांच वर्ष बाद जबर्दस्त कमोरीके बार बारके आक्रमणोंके कारण उनको पुनः पहाड़ोंमें जाकर रहना

पड़ा। पर्वतोंसे कभी कभी उतरकर उन्होंने शत्रुओंसे युद्ध किया। राज्यकी इस बुरी अवस्था और लगातार लड़ाइयोंमें राणा जयसिंहका बहुत धन खर्च हुआ था; परन्तु इतने पर भी बहुत अधिक द्रव्य व्यय करके वे जो अनन्त कीर्त्ति छोड़ गये उसका वृत्तान्त पढ़नेसे यह कहनेको जी चाहेगा कि मेवाड़भूमि सचमुच रत्नमयी है। एक पहाड़ी छोटी नदीके बीच एक बड़ा बांध बनवाकर राणाजीने "जयसमुन्द" नामक एक बहुत बड़ा सरोवर बनवाया। भारतवर्षमें जितने सरोवर हैं "जयसमुन्द" सबोंसे बड़ा है। इसके बनवानेमें प्राकृतिक सहायता भी मिली थी। जिस जगह यह सरोवर बना वहां प्रायः हर समय बहुत जल रहा करता राणा जयसिंहने अपनी बुद्धिमानीसे जलको चारों ओरसे बांधके द्वारा रोका। इस सरोवरका घिराव कोई पन्द्रह कोस होगा। इससे खेतीको बड़ी सहायता मिलती थी। इसके ऊँचे बांधके ऊपर राणाजीने अपनी प्यारी रानी कमलादेवीके † लिये एक सुन्दर महल बनवाया था।

घराऊ झगड़ोंके कारण राणा जयसिंहका अन्तिम जीवन बड़े कष्टमें बीता; उनके सुखमें बाधा पड़ी; यहांतक कि वे राज्यकार्य सम्हालनेके भी योग्य न रहे। उनकी जितनी रानियां थीं उन सबोंमें उनके उत्तराधिकारी अमरसिंहकी मां बड़ी थी। वह बूंदीके हाड़ा कुलकी उत्पन्न थी। वह सब रानियोंमें बड़ी थी—मेवाड़के भावी राणा अमरसिंहकी मां थी—अतएव धर्म्मतसे राणाजीको उसीसे सबसे अधिक प्रेम करना उचित था; पर इसके विपरीत वे छोटी रानी कमलादेवीको अधिक चाहते थे। कमलादेवी छोटी होनेपर भी पतिकी अधिक प्यारी होनेके कारण बड़ी सौतसे डाह करने लगी; इसीसे घराऊ झगड़े खड़े हुए। एक तो लड़ाइयों और शत्रुओंके उपद्रवोंके कारण मेवाड़की अवस्था खराब हो ही रही थी तिसपर यह अनर्थकारी घरका उपद्रव उठा। घराऊ झगड़ोंके कारण जो हानि होती है वह लड़ाईमें हार जाने पर भी नहीं होती। कई विवाह करनेकी प्रथा भारतके राजाओंको जो नुकसान पहुंचा रही है उसका परिचय इस वृत्तान्तसे मिल सकता है। यद्यपि भारतके दूसरे भागोंके राजे प्रधानता पानेके लिये

† कमलादेवी पँवार कुलकी राजकुमारी थी। वह "रूठी रानी" के नामसे प्रसिद्ध थी।

बड़ा बड़ा अनर्थ कर डालते हैं, पर मेवाड़का इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है कि महाराज बप्पारावलके वंशधरोंने बहुत ही कम ऐसा किया। इसका कारण गिह्लोट राजाओंकी अच्छी शासननीतिके सिवा और कुछ नहीं है। वे अपने पुत्रों को बहुत कम राजनीतिक अधिकार सौंपते थे। इससे यह स्पष्ट है कि राजपूतों का चरित्र उन्नत होता है।

अमरसिंहकी मां और कमलादेवीका "सौतियाडाह" दिन पर दिन बढ़ता गया और अन्तमें यहांतक बढ़ा कि दोनोंका एक स्थानमें रहना बिलकुल असम्भव हो गया। जो जयसिंह इससे पहले औरङ्गजेबसे युद्ध करके बड़ी वीरता और रणकुशलता दिखा चुके थे आज उन्होंने पारिवारिक विवादसे छुटकारा पानेके लिये अपनी बड़ी रानीको छोड़ कमलादेवीके साथ जयसमुन्दके एकान्त महलमें जाकर रहनेका निश्चय किया। राजधानीमें 'पाञ्चोली' मन्त्रीको अमरसिंहको सौंप अपनी उस चित्तविनोदिनीके साथ उक्त महलमें जाकर बड़े आलसीकी तरह वे दिन बिताने लगे। पर बहुत दिनोंतक वे शान्तिका आनन्द न उठा सके। शीघ्र पुत्र अमरसिंहके कड़े आचरणके कारण उनको उस एकान्त महलका निवास त्याग कर नगरमें लौटना पड़ा। अमरसिंहने अपनी कम उमरके जोशमें एक दिन एक मस्त हाथी नगरमें छोड़ दिया। कदाचित् इस शङ्कासे कि मदमाता हाथी कुछ हानि कर डालता या और किसी कारणसे पाञ्चोली मन्त्रीने उनपर कुछ डांट डपट की। इस पर अमरसिंहने मन्त्रीका बड़ा अपमान किया। मन्त्रीके साथ अमरसिंहका अनुचित बर्ताव करनेकी खबर राणा जयसिंह तक पहुंची। अमरसिंहकी ढिठाईका राणाजीको बहुत दुःख हुआ और उनको कुछ दण्ड देने का विचार करके वे जयसमुन्दका महल छोड़कर चित्तौड़ होते हुए उदयपुर गये। पर अमरसिंह उनके लिये नहीं रुके;—पिताके आलस्य और अकर्मण्यता पर बहुत नाराज होकर तथा मांसे उत्साह पाकर उन्होंने खुलाखुली विद्रोह किया। मांके कहनेसे वे बूंदीमें अपने मामा हाड़ा राजाके पास गये और दस हजार सैनिक लेकर वहांसे लौटे। मेवाड़के सरदारोंने भी अमरसिंहकी सहायता की। धीरे धीरे घरका झगड़ा इतना बढ़ा कि किसी तरह शान्त न हो सकता था। धीरे धीरे बहुतसे सरदार और सैनिक आलसी राणा जयसिंहको छोड़कर अमर-

सिंहके पक्षमें हो गये। तब झगड़ा मिटानेका कोई उपाय न देख वे अरावली पारकर गोढ़ार राज्यमें गये और वहांसे पुत्रको समझानेके लिये उन्होंने वहांके प्रधान सामन्त राजाको भेजा। पर राज्यके अधिकांश सरदारोंकी सहायता पाकर अमरसिंह बड़े अभिमानमें भर गये थे; अतएव उन्होंने समझाने या पिताके सन्देसे पर ध्यान नहीं दिया; बल्कि खजाने पर अधिकार करनेके अभिप्रायसे दलबलके सहित कमलमीरकी ओर यात्रा की। देप्रा सरदारके ऊपर खजानेकी रक्षाका भार था। वह बड़ा योग्य योद्धा था। यद्यपि विद्रोही अमरसिंहके पास उसकी अपेक्षा अधिक सेना थी पर उसने इनका सब उद्यम व्यर्थ कर दिया। विफल मनोरथ होनेपर भी अमरसिंहने पिताकी बात नहीं मानी। अन्तमें जब उन्होंने सुना कि जिन राठौड़ोंने उनके विद्रोहकी आग अधिक भड़काई थी वे भीतरही भीतर गोढ़ारराज्य पर अधिकार करनेका उद्योग कर रहे हैं और राणा जयसिंहके कुछ हितैषी सरदारोंने * ठान ली है कि यदि प्राण देने पड़ें तौभी हम जैसे बनेगा वैसे जीलवाड़ा दर्रेकी रक्षा करेंगे, तब उनके मनमें कुछ डर समाया और तब वे पितासे सन्धि करनेको लाचार हुए। भगवान् एकलिङ्गके मन्दिरमें पिता पुत्रने जाकर सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर किये। इस सन्धिके अनुसार निश्चय हुआ कि राणा जी जयसमुन्दका महल छोड़ नगरमें आकर रहेंगे और अमरसिंह नगरसे निकाले जाकर पिताकी जिन्दगी पर उसी महलमें रहेंगे।

राणा जयसिंहने २० वर्षों तक राज्य किया। कम उमरमें उन्होंने जिन अच्छे अच्छे गुणोंका परिचय दिया था यदि राजसिंहासन पर बैठनेके बाद भी वे वैसेही गुण दिखाते रहते तो मुगलग्राससे अपने देशको स्वाधीन कर सकते; परन्तु स्त्री-प्रेमने उनको बिगाड़ दिया। स्त्रीप्रेममें पड़कर वे बड़े आलसी और बेकाम हो गये और छोटी उमरमें जो गौरव प्राप्त किया था वह सब खो दिया। यदि वे "जय समुन्द" झील न बनवा जाते तो कदाचित् मेवाड़के घटनापूर्ण इतिहासमें उनका नाम ही न आता।

उनकी मृत्युके बाद संवत् १७५६ वै० (सन् १७०० ई०) में उनके ज्येष्ठ पुत्र

* जो सरदार राणा जयसिंहके पक्षमें थे उनके नाम ये हैं,—बिजोलीके बलोल, सालुम्ब्राके कुण्डलसिंह, गानोड़के गोपीनाथ और देसूरीके सोलङ्की।

अमरसिंह (द्वितीय) मेवाड़की गद्दी पर बैठे। अमर नामका जो माहात्म्य है वह बहुत कुछ इन अमरसिंहमें आ गया था। अपने पूर्वज वीरवर अमरसिंहके वीरत्व और महत्वके अनेक अंशोंका ये अनुकरण कर सके थे; पर पितासे झगड़ा करनेके कारण इनका तथा मेवाड़का बल बहुत घट गया था। यदि ये पितासे विद्रोह न करते तो मुगलसाम्राज्यके अधःपतनके समय मेवाड़भूमिके खोये हुए गौरवका पूरी तरह उद्धार कर सकते। पर मेवाड़का दुर्भाग्य था; नहीं तो वीरश्रेष्ठ स्वदेश प्रेमिक राजसिंहके पुत्र होकर राणा जयसिंह अनर्थकारी स्त्रीपरायणताके फेरमें क्यों पड़ते? राणा राजसिंह और जयसिंहके शासनसमय पर विचार करनेसे स्पष्ट मालूम होता है कि किसी राजाका सुख दुःख उसके सामन्त राज्योंके अधीश्वरों के चरित्र पर निर्भर करता है। स्वदेशानुरागी राणा राजसिंह अपनी स्वाभाविक वीरता महत्ता और तेजस्वितासे अपने अधीनस्थ लोगोंके हृदयमें स्वदेशप्रेम और आत्मोत्सर्गका जोश जाग्रत कर सके थे, इसीसे वे विपुलसहायसम्पन्न बलदर्पित औरङ्गजेब, उसके पुत्रों और उसके युद्धवीर सैनिकोंको पराजित कर सके थे। परन्तु उनके उत्तराधिकारी (अर्थात् राणा जयसिंह) मेवाड़के लोगोंकी सहानुभूति और सहायता होनेपर भी मेवाड़को ऐसी दीन हीन दरिद्र दशामें कर गये कि हजार यत्न करने पर भी उस दुर्दशासे उसका उद्धार किया नहीं जा सका।

राजसिंहासन पर बैठनेके थोड़े ही दिन बाद राणा अमरसिंहने बादशाहके भावी उत्तराधिकारी शाहआलमसे एक सन्धि की। इस सन्धिसे उनकी भविष्य-दर्शिताका साफ परिचय मिलता है। जिस समय वे पिताकी गद्दी पर बैठे उस समय मुगल साम्राज्यमें बड़ी भीतरी गड़बड़ फैल रही थी; औरङ्गजेबके पुत्र आपसमें लड़ और एक दूसरेका खून बहा बहाकर उस भीतरी झगड़ेकी आगको और भी भड़का रहे थे। मुगल बादशाहतकी यह दुरवस्था देखकर ही भविष्यदर्शी अमर-सिंहने होनेवाले मुगल बादशाह 'शाहआलम'से वह सन्धि * की जिसका जिक्र अभी

* राणा और शाहआलम बहादुरशाहमें गुप्त सन्धि। सन्धिपत्र पर शाह-आलमका दस्तखत।

"प्रजाओंकी भलाईके जो छः प्रस्ताव आपने उठाये और मैंने जिनका समर्थन किया वे ईश्वरके आशीर्वादसे पूरे होंगे,—

किया गया। जिस समय शाहआलम सिन्धुनदके पश्चिम पार गया था उस समय मेवाड़के सहकारी सैन्यदलने एक शक्तावत वीरकी सरदारीमें उसकी सहायतामें बड़ी वीरता प्रकट की थी। कहा जाता है कि इसी अवसर पर उस दूर-देशमें शाहआलमके साथ राणा अमरसिंहकी उक्त सन्धिकी लिखा पढ़ी हुई थी।

"प्रथम।—शाहजहांके समयकी तरह चित्तौड़का पुनर्गठन।

द्वितीय।—गोवध बन्द होना। (क)

"तृतीय।—शाहजहांके समयमें जो जिले मेवाड़राज्यमें थे उनकों पुनः राणा जीको वापस देना।

चतुर्थ।—जो (अकबर बादशाह) स्वर्गमें वास कर रहे हैं उनके समयकी भांति हिन्दुओंको पूर्ण स्वाधीनतासे देवताओंका पूजनादि तथा समस्त धर्मकृत्य करनेका अधिकार देना।

"पञ्चम।—जिसको राणा पदच्युत करें उसे बादशाहकी ओरसे कोई आश्रय न मिलना।

"षष्ठ।—अबसे दक्षिणकी लड़ाइयोंके लिये राणाजीसे सैनिक सहायताके न लिये जानेकी प्रतिज्ञा।" (ख)

(क) गोहत्याके विषयमें हिन्दुओंको कितनी घृणा है और गोहन्ताको हिन्दू कितना बड़ा पापी समझते हैं सो सभी जानते हैं। टाड साहबने लिखा है कि, "गोजाति पर हिन्दुओंकी अत्यन्त भक्तिसे हमलोग एक बड़ी राजनीतिक शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।" सन् १८१७—१८ ई० में राजपूतोंके साथ अङ्गरेजी गवर्नमेण्टकी जो सन्धि हुई थी उसमें दूसरी बातोंके साथ गोहत्याका बन्द किया जाना मुख्य विषय था।

(ख) मेवाड़की सहकारी सेना अजीमकी सहायतामें दक्षिणमें लड़ी थी; इसका प्रमाण अजीमका यह पत्र है जिसे उसने राणाजीको लिखा था,—

"राणा अमरसिंहको विदित हो कि अर्जी यथासमय पहुंच गई। आपकी माताका वृत्तान्त जानकर मुझे बहुत दुःख हुआ; पर क्या कीजियेगा—ईश्वरकी इच्छा कोई बदल नहीं सकता। मेरी भलाईके लिये सदा प्रार्थना करते रहियेगा।

जिस कारणसे मुगलकुलका अधःपतन हुआ, जिससे ही अन्तमें उस दूर देशमें अंगरेजी आधिपत्यका रास्ता खुला, उस कारण पर इस जगह विचार करना हम आवश्यक समझते हैं; क्योंकि ऐसा करनेसे एक अमूल्य राजनीतिक तत्व आपसे आप बाहर निकल पड़ेगा। उस तत्वकी महिमा पर मुग्ध होकर महानुभाव टाड साहबने स्पष्ट लिखा है कि "यह तत्व मानों एक निशानकी तरह हमलोगोंके सामने खड़ा होकर बतला रहा है कि नैतिक बलकी सहायताके बिना केवल तलवारके ज़ोरसे शासन करनेसे विपद् पड़ती है।" हिन्दुओंके शत्रु औरंगजेबकी शासनप्रणाली पर दृष्टि डालनेसे टाड साहबकी लिखावटकी सचाई प्रतीत होती है। औरंगजेब अपनी सेना और सहायकोंके बलके घमण्डमें विशुद्ध राजपूतोंसे घृणा करता था; इससे अपने पांवों तथा अपने विराट् राज्यकी जड़में उसने आप कुल्हाड़ी मारी। यद्यपि अपने बलके अभिमानमें वह अपनी असली अवस्था जान नहीं सका, तौभी यह स्पष्ट ही है कि राजनीतिज्ञ अकबरने विशाल साम्राज्यकी जो जड़ जमाई थी वह जड़ औरङ्गजेबके कारण कमजोर हुई। यदि औरंगजेब अपने राज्यके विषयमें जरा विचार करता तो मुगल साम्राज्य इतनी जल्दी नष्ट न होता। टाड साहबके समयमें अंगरेजी साम्राज्य जितना विस्तृत था औरंगजेबके समयमें मुगल-साम्राज्य उससे अधिक विस्तृत था। इसके सिवा सामान भी उसके पास बहुत अधिक और पूरी तरह रक्षाके योग्य था; विशेषकर यह बात थी कि राजपूतोंका उसका सम्बन्ध था। राजपूत लोग उसके द्वारा कष्ट पहुंचाये जाने पर भी अपने प्राणोंतकको देकर उसके साम्राज्यकी भलाई करनेमें चूकते नहीं थे;—यहांतक कि उसीके लिये राजपूतोंने सुदूर काबुल तक जाकर देश जय किया था। भारतवासी सदासे राजभक्त हैं; इसीसे अत्यन्त कठोर अत्याचार सहकर भी वे बादशाहके लाभके लिये तैयार रहते हैं। भारतवासी सदासे

राजा रायसिंहने आपके लिये एक बातका अनुरोध किया था; मैं आपको अपना अज़ीज समझता हूं। राजभक्तिके साथ आप निश्चिन्त रहें। आपके परम माननीय पूर्वजोंकी सब ज़मीन आपको मिलेगी; पर यह आपके कर्त्तव्यसाधनका समय है। और बातें आपको आपके ही लोगोंसे मालूम होंगी। मुझे न भूलियेगा। आपके राजपूतोंने अच्छा बर्ताव किया था।"

राजभक्त हैं§ यह बात अकबर समझ सका था;—जहांगीर और शाहजहां भी यह बात जान सके थे;—इसीसे भारतवासियोंकी अपूर्व राजभक्तिका बदला देना वे भूलते नहीं थे; परन्तु औरङ्गजेब उस राजभक्तिकी महिमा नहीं जानता था, या जानकर भी अनजान बनना चाहता था। औरंगजेबकी यदि इच्छा होती तो वह विना किसी कठिनताके अपने पूर्वजोंकी चाल पर चलकर भारतवासियोंकी उस राजभक्ति और उदारताका उचित बदला दे सकता; पर वैसा न करके विश्वासी और राजभक्त राजपूतोंके साथ उसने अनुचित बर्ताव किये और वाहियात "मुण्ड-कर" लगाकर उनकी अनुपम राजभक्तिका अपमान किया! इस "जिजिया" (मुण्डकर) के ही कारण मुगलसाम्राज्यका अधःपतन हुआ। यदि औरङ्गजेबके वंशधर उसके दिखलाये हुए गन्दे रास्ते पर चलकर मुण्डकर लगाकर भारतवासियोंके साथ अत्यन्त कठोर व्यवहार न करते, तो मुगल बादशाहतका इतनी जल्दी अन्त न हो जाता। जो औरङ्गजेब राणा राजसिंहके डरसे सारी हिन्दूजातिको मुसलमान कर डालनेकी अपनी इच्छा पूरी न कर सका था आज उसने मुण्डकर लगाकर अपनी कठोरता प्रकट की। सभी हिन्दुओं पर यह कर लगाया गया।

इस बातका प्रमाण कि औरङ्गजेब कट्टर हिन्दूविद्वेषी था, उसकी जीवनीकी हरएक पंक्तिसे मिलता है। यदि कोई हिन्दू अपना धर्म त्यागकर किसी तरह मुसलमान होता तो अत्यन्त पापी होनेपर भी औरङ्गजेब उसे अपने यहां आश्रय

§ हमारे युवराज (राजराजेश्वर श्रीमान् सप्तम एडवर्डके पुत्र श्रीमान् 'प्रिन्स आफ वेल्स') ९ नवम्बर १९०५ ई०को भारतमें भ्रमण करनेके निमित्त आये थे और १९ मार्च १९०६ को यहांसे विलायतको लौटे। विलायत पहुंचने पर १८ वीं मईको लन्दनके 'गिल्डहाल पैलेस' में अपने भारतभ्रमण पर वक्तृता देते हुए श्रीमान्ने भारतवासियोंकी सादगी और राजभक्तिके विषयमें जो बात कही थी उसका यह आशय है,—"भारतवासियोंकी सहनशीलता, सादगी, राजभक्ति और धर्मपरायणताका हमें खूब परिचय मिला है। यह भी हम जानते हैं कि हमारे शासनकी सचाई और न्याय पर उनको विश्वास है। हमने जो कुछ देखा और सुना है उससे कह सकते हैं कि यदि उनके साथ कुछ अधिक सहानुभूतिका बर्ताव किया जाय तो भारतशासन और भी सहज हो जाय।"

देता और उसका सत्कार करता। अनेक हिन्दूकलङ्क स्वधर्म त्यागकर उसके यहां गये थे, उनमेंसे केवल एकका हाल हम यहां लिखते हैं। इस व्यक्तिको अपने यहां आश्रय देकर औरंगजेबने अपने पांवोंमें आप कुल्हाड़ी मारी थी और इसका फल उसके वंशजोंके लिये बहुत बुरा तथा मुगल साम्राज्यके लिये तो एकदम नाशकारी हुआ था। सीसोदीयकुलकी एक शाखामें राव गोपाल नामक एक वीर राजपूत उत्पन्न हुए थे। वे चम्बलके किनारे सामन्त राजाको भांति रामपुर राज्यका भोग करते थे। दक्षिणकी लड़ाईके समय उनके अधीनके बहुतसे राजपूत सैनिकोंने उनकी सहायता की थी। दक्षिणको जाते समय वे अपने पुत्रको रामपुर राज्यके शासनका कार्य सौंप गये। दुष्ट पुत्रने पिताके जानेके बाद राज्यकी आमदनी पिताके पास न भेजकर सब आप ले ली; इसपर राव गोपालने बादशाहके यहां उसपर मुकद्दमा चलाया। उनका मूर्ख पुत्र पिता और बादशाह दोनोंके क्रोधसे बचनेका उपाय विचारने लगा;—बहुत विचारके बाद वह एक ऐसा उपाय निकाल सका जिससे उपस्थित सङ्कटसे उसका छुटकारा भी हो गया और अपनी मनकी अभिलाषा भी वह पूरी कर सका। वह नीच अपना धर्म त्यागकर मुसलमान हो गया। तब औरंगजेबने उससे अत्यन्त सन्तुष्ट होकर न केवल क्षमा कर दिया बल्कि रामपुरकी भूमिवृत्ति भी उसके पितासे छीनकर उसीको दे दी। पुत्रके इस नीच आचरणसे राव गोपाल बहुत दु:खित हुए; उनके मनमें बड़ी घृणा उत्पन्न हुई और दुष्ट पुत्रसे उचित बदला लेनेका विचार करके दलबलके सहित आकर उन्होंने रामपुरको घेर लिया। पर कुछ फल नहीं हुआ, बल्कि उनकी स्वाधीनता और उनके जीवन तकके नष्ट होनेके लक्षण दिखाई दिये। तब अपना बचाव करनेके लिये वे राणा अमरसिंहके यहां चले गये। क्रूर औरंगजेबको यह बात बर्दाश्त नहीं हुई; उसने राव गोपालको आश्रय देनेके कारण राणा अमरसिंहको विद्रोही कहा और उनके चालचलनकी जांच करनेके लिये अपने पुत्र अजीमको मालवा राज्यमें आकर रहनेकी आज्ञा दी। औरंगजेबके अधीनका एक राजपूत * अपने जीवनवृत्तान्तमें औरंगजेबकी इन बातोंका वर्णन कर गया है। उसकी जीवनीके एक स्थानमें लिखा है कि "बादशाह अपनी अत्यन्त विश्वस्त

* राव दलपत बुन्देला, दतियानिवासी।

और उपकारी राजपूतप्रजा पर बहुतही कम कृपा दिखाता है; इसीसे राजपूतों को भी उसके साथ उपकार करनेका ध्यान कम हो गया है।"

औरंगजेबका मतलब जानकर राणा अमरसिंहने उसके विरुद्ध तलवार उठाई। उनकी सहायताके निमित्त मालवाके राजा भी लड़ाईके मैदानमें उनके साथ गये। वे जहां थे उस प्रदेशमें मरहठोंने, जिनका सरदार नीमा सिन्धिया नामक एक वीर महाराष्ट्र था, बड़ा उपद्रव मचा रखा था *। उनका उपद्रव रोकनेके लिये औरंगजेबने राजा जयसिंहको अजीमके पास भेजा; परन्तु इनके जानेका भी अच्छा फल नहीं हुआ। औरंगजेबके अत्यन्त कठोर अत्याचारोंके कारण उस समय भारतवर्षके प्रायः सब प्रदेशोंमें उपद्रव मच रहा था; सभी ओरके लोग उसका बुढ़ापा तथा उसे घराऊ झगड़ोंका शिकार बना हुआ देखकर मुगलोंकी अधीनता की बेड़ी काटकर स्वतन्त्र और स्वाधीन होनेका उद्योग कर रहे थे। ऐसी दशामें औरंगजेब कहां कहां बचाव करता? किसका किसका उपद्रव और जोश दबाता? एक ओर महा पराक्रमी मरहठे लोग वीरवर शिवाजीके उत्साहसे उत्साहित होकर स्वाधीनता पानेके लिये उगते हुए सूर्यकी तरह धीरे धीरे विराट् मूर्त्ति धारण करते जाते थे दूसरी ओर कष्ट पाये हुए राजपूत सामन्त मुगल साम्राज्यसे स्वतन्त्र हो रहे थे। उधर औरंगजेब बाहरी उपद्रवोंसे घबरा रहा था इधर भीतरी उपद्रव थे। उसकी अन्तिम उमरमें उसके पुत्र और पौत्र साम्राज्य पानेके लिये आपसमें खूनखराबी करने लगे। इन्हीं झगड़ोंमें आधी शताब्दीतक कठोरताके सहित राज्य करके अपने नामपर बसाये हुए औरङ्गाबाद नगरमें सन् १७०७ ई० में (२८ वीं जीकादको) औरङ्गजेब परलोकवासी हुआ।

औरङ्गजेबकी मृत्यु होतेही उसके पुत्रों और पौत्रोंने बड़ी गड़बड़ मचाई। उसकी मृत्यु पर शोक प्रकाश करना तो दूर था, सब राज्य पानेकी आशा कर देहली गये। पहले उसके दूसरे पुत्र अजीमने तख्त पर अधिकार किया; पर बड़े भाई मुअज्जमको दलके सहित आते देखकर उसे मार भगानेके लिये दतिया और कोटा † के राजपूतोंके सहित वह आगरे गया। मेवाड़, मारवाड़ और 'रजवाड़े' के

* सन् १७०६—७ ई० में।
† राव दलपत (बुन्देला) और राव रामसिंह (हाड़ा)।

पश्चिम राज्योंके सब अधिकारी मुअज्जमके पक्षमें थे। आजी नामक स्थानमें मुअज्जम और अजीमकी सेनाओंका मुकाबला हुआ। इस लड़ाईमें अजीम दतिया और कोटाके दोनों राजाओं तथा अपने पुत्र बेदारबख्तके सहित मारा गया। इसके बाद मुअज्जम निष्कण्टक हो तथा अपना नाम शाहआलम बहादुरशाह रख कर देहलीके तख़्तपर बैठा। मुअज्जममें अनेक गुण थे। यदि वह हिन्दूहितैषी शाहजहांके बाद पैदा होता और उसकी गद्दीपर बैठता तो कदाचित् वीर तैमूर का विशाल वंशवृक्ष लम्बे चौड़े भारतरूपी जमीनसे बहुत शीघ्र उखड़ न जाता और कदाचित् अबतक मुगलोंका ही भारतमें राज्य होता। पर इस संसारमें किसीका गौरव सदा नहीं रहता; नहीं तो औरङ्गजेब रक्षक होकर बादशाह होकर क्यों गरीब प्रजाओंके साथ अत्यन्त कठोर बर्ताव करता? क्यों उसका राज्य अत्याचारोंसे भरा हुआ कहा जाता? औरंगजेब वीर तैमूरका अयोग्य वंशधर था; उसके पूर्वजोंने भारतवर्षमें अपना राज्य स्थिर रखनेके लिये जिन नीतियोंसे काम लिया था उन नीतियोंकी उसने परवा नहीं की। वह हिन्दुस्थानका बादशाह था; विशाल भारतभूमि उसके अधीन थी; यदि वह चाहता तो अपने पूर्वजोंकी नीति पर चलकर विश्वस्त राजपूतोंको,एक एक जिला या प्रदेश देकर उत्साहित और अनुगृहीत कर सकता; पर उसकी कठोर हिन्दूविद्वेषिताने उसे हिन्दुओंके साथ कोई अच्छा बर्ताव करने नहीं दिया *। वीर बाबर जिन हिन्दुओंको सदा सन्तुष्ट

* भारतवासियोंके लिये कितने अंगरेजोंने कुछ चिन्ता की? धन्य टाड साहब! आप भारत हीके लिये संसारमें आये थे और भारत हीकी भलाई करके दुनियासे अपने मुख मोड़ा। पाठक! यद्यपि टाड साहबका जो उद्देश्य था वह पूरा नहीं हुआ, पर वे जो काम कर गये वह भी कुछ कम नहीं है; केवल उसी कामसे भारतबासी सदा उनका नाम भक्तिके साथ स्मरण करेंगे। भारतके लिये टाड साहबने बड़ी चिन्ता की, इसका सबसे बड़ा प्रमाण तो यह पवित्र "राजस्थानका इतिहास" ही है। औरंगजेबने हिन्दुओंके साथ कैसा व्यवहार किया तथा अंगरेज सरकार क्या बर्ताव करती है इस विषयमें दोनोंका मुकाबला करके इसी जगह टाड साहबने लिखा है कि "अंगरेज भारतबासियोंकी राजभक्ति प्राप्त करनेके लिये क्या पुरस्कार देती हैं? दुस्सह महसूलके कारण वे (भारतवासी) अ-

रखनेका यत्न किया करता था, उसके कई अच्छे वंशधर जिनके मान सम्मानकी रक्षाका बराबर ध्यान रखते थे, औरंगजेबने कठोरतम अत्याचारोंके द्वारा उनके हृदयोंमें ऐसे घाव कर दिये कि वे घाव किसीसे आरोग्य नहीं हुए । राजपूतोंने मुगलसाम्राज्यसे सब प्रकारका सम्बन्ध त्याग दिया । गुणवान् बहादुरशाह अपने थोड़े समयके राजत्वमें राजपूतोंके हृदयके गहरे घावोंको आराम न कर सका । वह गुणवान् अवश्य था, पर राजपूतोंको उसपर विश्वास नहीं था। बहुत वर्षोंके अनुभवसे राजपूतोंको निश्चय हो गया था कि जितने मुगल हैं सभी अविश्वासी और निष्ठुर हैं और यह कि भयानक जोंककी तरह उन्होंने राजस्थानका सब खून पी लिया है। जब बहादुरशाह भी मुगल ही था, तब वह भी यदि रज-वाड़ेका खून पीनेकी चेष्टा करता तो क्या आश्चर्य था ? ये बातें विचार करके एक दूसरेकी भलाईके लिये राजपूतोंने आपसमें सन्धि की। बहादुरशाहने उनको सम-झाने और सन्तुष्ट करनेका बहुत उद्योग किया, उनके पूर्वजोंकी दृढ़ राजभक्तिका उदाहरण देकर मुगलोंसे पुनः सम्बन्ध करनेका उनसे अनुरोध किया, पर उसके सब उद्योग वृथा हुए ¶; राजपूतोंके मनमें जो विश्वास पैठ गया था वह किसी तरह न निकला । वे खूब समझ गये थे कि असंख्य कर्त्तव्यसाधन करने यहांतक कि प्राण तक दे देनेसे भी मुगलोंकी कृतघ्नता और निठुराईसे छुटकारा नहीं मिल सकता। इसीलिये उन्होंने बहादुरशाहकी कोई बात न सुनी। जब बहादुरशाहका दूत पत्र लेकर उनके यहां गया तो उन्होंने यही जवाब दिया कि "देवता विमुख होनेसे लोगोंका मत भी बदल जाता है।"

राजपूतोंका ऐसा आचरण देखकर बहादुरशाह शीघ्र समझ गया कि भविष्य में वे उसे बहुत कम सहायता देंगे । इन्हीं घटनाओंके समयमें उसके छोटे भाई

पने परिश्रमसे तैयार की हुई चीजोंको बाजारोंमें ले जाकर बेच नहीं सकते। * * * विश्वस्त (देशी) सैनिक सालमें १२० पौण्डसे अधिक पानेकी आशा नहीं कर सकते। और तो क्या, जिन कारणोंसे सब बातोंका सुभीता रहते हुए भी औ-रंगजेबके वंशधरोंने राज्य खोया, उन कारणोंपर भी (अंगरेजोंकी ओरसे) बहुत कम ध्यान दिया जाता है।"

¶ सन् १७०९—१० ई० ।

कामबख्शसे उससे झगड़ा मचा। कामबख्शने दक्षिणमें अपनेको बादशाह प्रकट किया था। अभी बहादुरशाह कामबख्शको दमन कर जरा निश्चिन्त हुआ ही था कि सिखोंका जोश रोकनेके लिये उसे उत्तर देशको जाना पड़ा। गुरु नानकने इस वीर जातिकी प्राणप्रतिष्ठा की थी। सिख उन्हींके शिष्य हैं। कहा जाता है कि आक्सस नदके किनारेके शाकद्वीपी प्राचीन जित या जाट कुलमें सिख उत्पन्न हुए थे; बाद खृष्टीय पांचवीं शताब्दीमें वे भारतके पञ्जाब प्रदेशमें आये। गुरु नानकके उपदेशोंसे उत्साहित होकर अपनी रक्षाके योग्य वीरता प्राप्त कर एक शताब्दीके बाद धीरे धीरे सिखोंने अपनेको स्वाधीन प्रकट किया। बहादुरशाहके समयमें मुगल-साम्राज्य भरमें सिखही एक स्वाधीन जाति थी। इस जातिको स्वाधीन होते देखकर बहादुर पञ्जाबकी ओर बढ़ा। लड़ाईमें जानेके समय अम्बर और मारवाड़के राजे उसके खेमेमें उससे मिले; पर उससे बिना कुछ कहे और बिना उसकी अनुमति लिये वे वहांसे लौट गये। उनके चित्तके सहसा बदलजानेका कोई स्पष्ट कारण मालूम नहीं होता। एक इतिहाससे मालूम होता है कि उन्होंने सिखोंका उमङ्ग और उत्साह देखकर मुगलोंकी अधीनतारूपी बेड़ीसे अलग होकर अपनेको भी स्वतन्त्र करनेका निश्चय किया।

जिस समय राजपूतोंने सिख वीरोंको देखकर अपनेको स्वाधीन करना चाहा उस समय बहादुरशाहने उनको समझाने तथा शान्त करनेके लिये अपने बड़े लड़केको उनके पास भेजा। राजपूतोंने उसका सत्कार किया, पर उसका समझाना बुझाना एक न माना। उनको विश्वास दिलानेकी बहादुरशाहने बहुत चेष्टा की; पर किसी चेष्टाका फल नहीं हुआ। इसके बाद उसकी अनुमति लिये बिना ही राजपूत उसके खेमेसे निकलकर राणा अमरसिंह (द्वितीय) के पास गये। वहां सबने आपसमें सन्धि की। इस प्रकार राजस्थानकी तीन बड़ी बड़ी-शक्तियां मिलकर एक हो गईं; राठौड़ और कछवाहे बहुत दिनोंके बाद सीसोदियोंमें मिले; तीनोंमें खान पान विवाहादिका सम्बन्ध होने लगा। यह सम्मान पुनः पानेके लिये ही उन्होंने एकता करनी चाही थी। सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर करनेके समय अम्बर और मारवाड़के राजाओंने अपने अपने इष्टदेवका नाम लेकर शपथ की कि अब हममेंसे कोई कभी मुगलोंके साथ पारिवारिक या राजनीतिक सम्बन्ध

नहीं करेगा। यह भी स्थिर हुआ कि सीसोदियोंके साथ वैवाहिक बन्धन होनेपर सीसोदीय राजकुमारियोंसे जो सन्तानें पैदा होंगी वे उच्च सम्मान पा सकेंगी। यदि पुत्र हो तो राजगद्दी पर बैठेगा; कन्या हो तो वह राजकुलमें दी जायगी;— प्राण रहते कोई अपनी कन्याओंको मुगलोंको देकर अपना कुल कलङ्कित नहीं करेगा।

राठौड़ और कछवाहे राजाओंने सीसोदियोंसे प्राचीन सम्मान पाकर मुगलों की अधीनतासे छुटकारा पानेके उद्देश्यसे सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर तो कर दिये, पर इससे उनकी एक बहुत बड़ी हानि हुई। उनमें सदा बड़ेके अधिकार पानेका जो नियम था वह नियम टूट गया। जो प्रथा बहुत दिनोंसे चली आती हो उसमें यकायक फेरफार होनेका अवश्य बुरा फल होता है। इस प्रथामें गड़बड़ पड़नेके कारण मारवाड़ और अम्बर राज्योंमें जो घराज उपद्रव खड़ा हुआ वह सहजमें नहीं दबा। उसे दबानेके लिये जो मध्यस्थ बना, उसके कारण राजपूतोंकी उससे भी अधिक हानि हुई जितनी मुगलोंसे हुई थी। जबर्दस्त महाराष्ट्र लोग मध्यस्थ हुए। आपसमें सन्धि करके राजपूतोंने मुगलोंके विराट् सिंहासनको तो गिरा दिया पर इसी जरियेसे जो जबर्दस्त शत्रु उनके घरमें घुसा उसने उन्होंको नीचा दिखा कर छोड़ा।

जिस दिन औरङ्गजेबने कुलकलङ्क रतनसिंह (रामपुरके अधिकारी राव गोपालके पुत्र) को उसके पितासे बचाकर अपने यहां आश्रय दिया था, जिस दिन लाचार होकर राव गोपालसिंह उदयपुर गये थे, राणा अमरसिंह (द्वितीय) उसी दिन रामपुरका उद्धार करनेको तैयार हुए थे; परन्तु कई कामोंमें फँसे रहनेके कारण अभीतक वे यह कार्य कर नहीं सके थे। इस समय राठौड़ और कछवाहे राजाओंके साथ एकत्र होकर उन्होंने अपने विचारके पूरा करनेका प्रबन्ध किया पर विचार पूरा नहीं हुआ; राजा मुसलिमखांने * सब उद्योग व्यर्थ कर दिया। बादशाहने मुसलिमखांकी जीतका हाल सुनकर उसे बहुत पुरस्कार दिया। दूतने इस जीतके समाचारके साथ साथ बादशाहसे एक और भी बात कही जिसका मत लब यह है—"राणाजीने राज्य छोड़कर पहाड़ोंमें जाकर बसनेका निश्चय किय

* मुसलमान हो जाने पर रतनसिंह मुसलिमखां कहा जाने लगा था।

है।" इन दोनों समाचारोंके कुछ ही दिन बाद बादशाहने एक और यह खबर सुनी कि राणाजीके सांवलदास नामक एक कर्मचारीने पुरमण्डलके शासनकर्त्ता फीरोजखां पर आक्रमण किया और फीरोजखां हारकर अजमेर भागा; पर वीर जयमलका योग्य वंशधर इस लड़ाईमें मारा गया। फीरोजखांके हारकर भागने और कष्ट उठानेका हाल सुनकर बादशाह बहुत दुःखित हुआ और डरा। जिस साहसी और पराक्रमी दुर्गादासने पितृद्रोही अकबर (औरंगजेबके पुत्र) को अनेक विपत्तियोंसे बचाया था वे मुगलसाम्राज्यकी इस दुरवस्थाके समय फिर प्रकट हुए। उनका राजा उनका पोषण न कर सका इसलिये वे उदयपुर गये। उदयपुरमें राणाजीने उनका सत्कार किया और उनके लिये ५००) पांचसौ रुपया दैनिक वृत्ति नियत कर दी। इन सब राजपूत वीरोंको मिलाकर जो मजबूत शक्ति तैयार हुई उसे शाहआलमके समयमें नहीं किन्तु उसके बाद तख्त पर बैठनेवालेके समयमें अपनी वीरता प्रकट करनेका अवसर मिला; क्योंकि इस बलवती शक्तिके तैयार होनेके प्रारम्भहीमें शाहआलमको एक व्यक्तिने जहर देकर मार डाला †।

शाहआलम सीधा और नेक बादशाह था, परन्तु दुर्भाग्यसे अपने पिता (औरंगजेब) के सब पापोंका फल उसे भोगना पड़ा। उसकी सब आशाएँ मिट गईं। उसके शासनसमयमें हिन्दूकुशसे लेकर समुद्रतक भारतके सब प्रदेशोंमें सब गड़बड़ मच रही थी। उसने सोचा था कि सब गड़बड़ दूर करके सुख और शान्तिसे राज्य कर सकूंगा; पर ऐसा नहीं हुआ। यदि उसे जहर न पिलाई जाती, यदि वह कुछ दिन और संसारमें रहता, तो कदाचित् गिरते हुए मुगलसाम्राज्यकी रक्षा कर सकता। पर ईश्वरको यह बात स्वीकार नहीं थी। उसके वंशधरोंने मुगलकुलका बचा हुआ गौरव भी नष्ट कर डाला।

जिस दिन शाहआलम बहादुरशाह जहरके द्वारा मारा गया उसी दिनसे मानों देहलीका तख्त डगमगाने लगा; उसी दिनसे मुगलसाम्राज्यके उत्तराधिकारी मानों खूनके तालाबमें गोते लगाकर उस डगमगाते हुए राजसिंहासन पर बैठने लगे;—पर कोई उसे स्थिर न कर सका। अन्तमें बारा नामक स्थानसे हुसैन-

† सन् १७१२ ई०।

अली और अब्दुल्लह नामक दो सैयद भाइयोंने आकर मुगल बादशाहतको ऐसा बना लिया कि राज्यका मुख जिधर उनकी इच्छा होती उधर वे फेर सकते थे, अर्थात् मनमाने कार्य कर सकते थे। बाबर, अकबर, जहांगीर, शाहजहांके तख़्त पर ये क्रूर सैयद भाई अपनी इच्छाके अनुसार अपने चुने हुए लोगोंको बिठाने लगे। तख़्त पर एकके बाद दूसरेके बैठनेका जो सदाका नियम था उसमें एकदम फेरफार हुआ; धर्म्म और न्याय पांवोंके नीचे कुचले जाने लगे। जो दौलत या आराम देकर हुसैन और अब्दुल्लहको प्रसन्न कर सका वही कुछ समयके लिये भारतका बादशाह बन गया, पर तख़्त पर बैठनेके बादही उसकी दुर्दशा हुई; दोनों "राजस्रष्टाओं"ने उसको उतारकर दूसरेको तख़्त पर बिठाया। इस प्रकार मुगल बादशाहत और मुगल बादशाहोंके वंशधर इन दोनोंके हाथोंकी कठपुतलियां बनकर मुगलकुलके अधःपतनकी बातें संसार पर प्रकट करते करते संसारसे लोप हो गये।

जिस समय राजस्थानकी तीनों शक्तियां एक हुई थीं उस समय इन दोनों "राजस्रष्टाओं" (हुसैनअली और अब्दुल्लह) ने फर्रुखशेरको देहलीके तख़्त पर बिठाया था। तेजस्वी पर सहनशील राजपूतलोग हिन्दूवैरियोंके अत्याचारोंको बराबर सहते आये थे परन्तु इन दोनोंकी मनमानी कारवाइयों तथा भारतभूमिकी दुर्दशा देखकर उनसे अब चुप न रहा गया। मुसलमानोंने हिन्दूदेवालयोंको तोड़कर उनकी जगह जो मस्जिदें बनाई थीं आज राजपूत उन मस्जिदोंको गिरवाकर जमीनके बराबर करने और मुल्लों तथा काजियोंको घोर कष्ट पहुंचाने लगे। राजपूतोंकी जो स्वाधीनता मुगलोंने मुल्लों और काजियोंको दे दी थी उसे राजपूतों विशेषकर राठौड़ोंने पुनः छीना। यशोवन्तसिंहके मरनेके बादसे राठौड़ मुगलोंसे अपने सब स्वत्वोंको बचाते आये थे; इस समय अजितसिंहने मारवाड़से मुगलोंको एकदम बाहर कर दिया। इस अवसर पर राजस्थानकी तीनों शक्तियां प्रसिद्ध सांभर झीलके किनारे इकट्ठी हुईं। यही झील मेवाड़, मारवाड़ और अम्बरकी साधारण सीमा मानी गई और निश्चय हुआ कि और अधिक जो जमीन मिले उसे तीनों बराबर बराबर बांट लें। ऐसाही होने लगा।

राजपूतोंका जोर क्रमशः बढ़ता गया। आखिर बादशाह फर्रुखशेरने उनका

ओर और उनकी कठोरता दबानेका मन्सूबा बांधा । 'अमीरउलउमरा' ❋ दलबलके सहित अजितसिंहके विरुद्ध चला । इसी समय अजितसिंहको फर्रुखशेरकी एक गुप्त चिट्ठी मिली । उसमें अजितसिंहसे फर्रुखशेरने अनुरोध किया था कि आप 'अमीरउलउमरा' हुसैनअलीको मार भगावें । बादशाहने अपने ही सेनापतिको हरानेके लिये अपने शत्रुके पास पत्र क्यों भेजा ? इसका एक कारण था । वह जानता था कि नाममात्रकी बादशाहत उसके हाथमें है; हुसैनअली और अब्दुल्लह जो मनमें आता है करते हैं । उन दोनोंकी प्रतिष्ठा दिन पर दिन बढ़ती जाती थी इस सबबसे वह और भी डरता था । उनका मान घटानेके निमित्त उसने बहुत उद्योग किया था, पर घटना तो दूर था उन दोनोंका मान बराबर बढ़ता ही गया । इससे फर्रुखशेरके मनमें बहुत तरहके सन्देह पैदा होने लगे और अवसर पाकर उसने अजितसिंहके पास वह गुप्त पत्र भेजा । पर उसका मतलब सिद्ध नहीं हुआ । अजितसिंह और उन दोनों सैयदोंमें सन्धि हो गई और अजितसिंहने बादशाहको नियमित कर तथा अपनी एक कन्या देना स्वीकार किया ।

जिस दिन मारवाड़की राजकुमारीका विवाह फर्रुखशेरके साथ स्थिर हुआ समझ लीजिये कि उसी दिन भारतमें अंगरेजी प्रभुत्वका रास्ता खुला । विवाहसे कुछ पहले यकायक बादशाहकी पीठमें एक फोड़ा निकल आया । धीरे धीरे वह बहुत बढ़ गया । बड़े बड़े हकीम और जर्राह उस फोड़ेको आराम करनेकी चेष्टा करने लगे; पर वह आराम नहीं हुआ । बादशाहको तकलीफ बहुत बढ़ गई । विवाहका दिन बहुत निकट था, पर फोड़ा आराम नहीं होता था; यहांतक कि विवाहका दिन भी बीत गया और वह आराम नहीं हुआ । बादशाह बहुत कमजोर हो गया; लोगोंको उसके विषयमें और ही कुछ शङ्का होने लगी । उस समय सूरतमें आये हुए अंगरेज व्यापारियोंका एक दूत बादशाहके दरबारमें था; वह डाक्टरी जानता था खासकर चीरफाड़ करनेमें बड़ा निपुण था । जब किसी प्रकार बादशाहका फोड़ा अच्छा नहीं हुआ तब उस अंगरेज दूतकी चिकित्सा आरम्भ हुई । उसका नाम हैमिल्टन था । हैमिल्टन साहबने बहुत शीघ्र

❋ हुसैनअली 'अमीरउलउमरा'के नामसे प्रसिद्ध था और उसका भाई अब्दुल्लह 'कुतुबुलमुल्क' के नामसे ।

आराम कर दिया। आराम होनेके बाद बादशाहने बड़ी धूमधामके साथ विवाह किया। विवाहके उपरान्त एक दिन फर्रुखशेरने मिस्टर हैमिल्टनको अपने पास बुलाकर बड़े स्नेहके साथ पूछा "आप मुझसे क्या पुरस्कार चाहते हैं?" हैमिल्टन साहबने उत्तर दिया—"शाहन्शाह! मैं धन नहीं चाहता, मान नहीं चाहता, कोई पदवी नहीं चाहता। हमलोग दूर देशसे केवल वाणिज्य करनेको आये हैं; आपके साम्राज्यमें हमलोगोंको पांव धरनेका भी स्थान नहीं है। इस समय मेरी आपसे यही प्रार्थना है कि आप कोई अधिकार-पत्र लिख दें कि जिससे हमलोगोंको थोड़ा स्थान मिल जाय और व्यापार करनेका सुभीता हो।" बादशाहने सन्तुष्ट होकर उसको प्रार्थना पूरी की। उस दिन भारतरूपी विशाल खेत में अंगरेजी प्रभुत्वका जो बीज पड़ा वह समय पाकर अङ्कुरित हुआ और धीरे धीरे बहुत बड़ा वृक्ष होकर सारे भारतवर्षमें फैल गया। आज उस वृक्षको छायामें असंख्य भारतवासी विश्राम कर रहे हैं।

मुगल बादशाह फर्रुखशेरको हैमिल्टन साहबका सच्चा स्वदेशप्रेम और निःस्वार्थ भाव देखकर आश्चर्य हुआ। यदि हैमिल्टन चाहता तो निस्सन्देह बहुत धन पा जाता, अवश्य किसी सामन्त राजाको तरह बहुत बड़ा अधिकार भोग सकता; पर तुच्छ स्वार्थ त्याग कर अपने देश और अपने देशभाइयों (अंगरेजों) का उसने जो बड़ा भारी उपकार किया उसका उसे क्या बदला मिला? जिस हैमिल्टनके असीम माहात्म्य और स्वार्थत्यागके गुणसे आज इस आर्यभूमिमें अंगरेजोंका अखण्ड अधिकार है उसका उसके देशवासियोंने क्या उपकार माना और उसे क्या बदला दिया? कुछ नहीं। दुःखकी बात है कि जिस दिन हैमिल्टनकी आत्मा उसके शरीरके बाहर निकली, जिस दिन उसका मृत शरीर कलकत्तेके एक मामूली मकबरेमें चुपचाप बिना किसी आडम्बरके गाड़ा गया, उस दिन किसी ब्रिटन (अंगरेज) ने कृतज्ञ हृदयसे उसकी कब्रके ऊपर उसकी यादगार बनाये रखनेके लिये कोई चिन्ह खड़ा नहीं किया। उस सुनसान स्थानमें ब्रिटिश-गौरवकी उस पवित्र शरीरकी हड्डियां पँसलियां मट्टीमें मिली पड़ी हैं; दुर्जयकाल उनको भी नष्ट कर डालेगा। पर कौन देखता है? कौन जानता है कि इस जमीनके अन्दर इङ्गलैण्ड का प्राण अनन्त नींदमें सो रहा है? हाय! इस संसारमें कृतज्ञता नहीं है।

लोगोंने समझा था कि मारवाड़की राजकुमारीका विवाह फर्रुखशेरके साथ हो गया अब मुगल लोग राजपूतोंके साथ अच्छा बर्ताव करेंगे; परन्तु उलटी बात हुई। विवाहके कुछ ही दिन बाद फर्रुखशेरने "जिजिया" कर पुनः लगाया। यद्यपि इस बार यह कर उतना कठोर नहीं था जितना औरंगजेबने लगाया था पर हिन्दू इसका नाम सुनकर ही घबरा उठे †। इससे पहले मुगलोंके प्रति उनको जो थोड़ासा अनुराग हुआ था वह यह कर पुनः लगनेसे बिलकुल नष्ट हो गया। हिन्दू समझ गये कि मुगलोंके विषयमें उन्होंने जैसा समझा था वैसीही बात है; मुगल कभी हिन्दुओं पर दया नहीं करेंगे और जिस उद्देश्यसे मुण्डकर की प्रथा चली वह उद्देश्य कभी नहीं बदलेगा। दोनों सैयद भाइयोंकी शक्ति घटानेके अभिप्रायसे क्षीणहृदय फर्रुखशेरने औरंगजेबके पुराने मन्त्री इनायतुल्लहखां को वजीरके पद पर नियुक्त किया। कहा जाता है कि वह देशकाल पात्र का विचार न करके हिन्दुओं पर बड़ी कड़ाई करने लगा और उसीके कारण कठोर "जिजिया" कर पुनः स्थापित हुआ। यद्यपि इस "जिजिया" और औरङ्गजेबके कठोर "जिजिया" करमें बड़ा अन्तर था, यद्यपि यह कर वार्षिक आमदनी पर बहुत हलका लगाया गया था, यद्यपि अन्धों अपाहिजों और दीन दरिद्री इस करसे मुक्त थे, तथापि यह "काफिरोंके ऊपर कर" कहा जाता था इसीसे हिन्दू बड़े नाराज हुए थे। इस संसारमें अपनी शक्ति भर कौन नहीं करके बोझसे बचना चाहता? जो धार्मिक हिन्दू देवता मानकर अपने राजाकी पूजा करते हैं, जो अपने राजाको मनुष्य कहना पाप समझते हैं, वे हिन्दू दुस्सह करके कारण सब राजभक्ति भूल गये ‡।

मारवाड़में जिस समय ऐसी घटना हो रही थी उस समय राणा अमरसिंह (द्वितीय) खाली बैठे नहीं थे। अजितसिंहके आपसकी एकता और सन्धि तोड़

† फर्रुखशेरने हर २०००) रु० पर १३) रु० "जिजिया" लगाया था।

‡ "जिजिया" से बहुत दिन पहले "तमघा" (स्टैम्प कर) प्रचारित हुआ था। राणा सांगा पर विजय पानेके समय बाबरने हिन्दुओं पर यह कर लगाया था। यद्यपि यह "जिजिया" से बहुत हलका था तौभी हिन्दुओंने इसका बड़ा ही विरोध किया था।

डालनेसे वे निरुत्साह नहीं हुए। दूसरेकी सहायताकी परवा न करके उन्होंने अपने बल और वीरत्वका भरोसा किया और अपनी तथा समग्र राजपूत जातिकी स्वाधीनता पुनः प्राप्त करनेके निमित्त यत्न करनेका निश्चय किया। कैसी सावधानी और उत्साहसे उन्होंने कार्य किया इसका एक विशेष प्रमाण मिलता है। वह प्रमाण एक सन्धिपत्र § है। फर्रुखशेरने राणाजीके साथ उक्त सन्धि की। इस सन्धिके दूसरे ही अंशमें "जिजिया" करके उठा देनेकी प्रतिज्ञा है।

§ "प्रथम अंश।—हफ़्तहजारीका मन्सब (क)।

"दूसरा अंश।—पञ्जेका निशान किये हुए प्रमाणपत्रके द्वारा यह प्रतिज्ञा हुई है कि 'जिजिया' कर उठा दिया जावेगा, कि हिन्दुओं पर यह कर फिर कभी नहीं लगाया जावेगा, कि किसी प्रकार कोई चगतई बादशाह मेवाड़ पर यह कर नहीं लगा सकेगा। यह कर एकदम उठा दिया जावे।

"तीसरा अंश।—दक्षिणमें जो एक हजार सवारोंकी सेना सहायताके लिये ली जाती है वह न ली जाय।

"चौथा अंश।—हिन्दुओंके धर्म्ममन्दिर पुनः बनाये जावेंगे और हिन्दू स्वाधीनतापूर्वक धर्म्मकर्म्म कर सकेंगे।

"पांचवां अंश।—मेरे मामा, चचा, भाई या सरदार यदि आप (बादशाह) के यहां जायँ तो उनको आप किसी प्रकारका आश्रय या उत्साह न दे सकेंगे।

"छठा अंश।—देवल, बांसवाड़ा, डूंगरपुर और सिरोहीके अधिकारी तथा दूसरे स्थानोंके जमींदार जिनपर मैं अधिकार पानेको हूं आपके यहां जाने नहीं पावेंगे।

"सातवां अंश।—मेरे सरदार ही मेरे सैनिक बल हैं। किसी नियत समयके लिये आपको सैनिक सहायताकी आवश्यकता होगी तो मैं नियमानुसार सहायता दूंगा; पर उनको आपको खुराकी देनी पड़ेगी और कार्य हो जाने पर उनका हिसाब चुका देना पड़ेगा।

"आठवां अंश।—जो हकदार, जमींदार और मन्सबदार सच्चे जीसे आपकी

(क) हफ़्तहजारीका मन्सब अर्थात् सात हजार सवारोंकी सरदारी। यही सबसे बड़ी पदवी थी।

अठारहवीं शताब्दीके प्रारम्भमें राजपूतों और मुगलोंकी क्या अवस्था थी सो इस सन्धिपत्रसे मालूम हो जाता है। सन्धिके आठवें अंशमें प्रकट है कि राणा बादशाहके रक्षकके समान थे। सप्तहजारीकी मन्सबदारीसे तेजस्वी राणा अमरसिंह (प्रथम) याद आते हैं। राज्य त्यागकर वे पहाड़ों और जङ्गलोंमें रहे थे पर किसीकी अधीनता स्वीकार नहीं की थी। सन्धिमें येही तीन स्वत्व मुख्य थे,—धार्म्मिक कामोंमें स्वाधीनता, सीसोदीय कुलके प्राचीन सामन्तोंके ऊपर राणाजीका आधिपत्य और कर-रहित जितने विषय थे उनको पुनः प्राप्त करना। इन तीनों स्वत्वों पर विचार करनेसे स्पष्ट मालूम होता है कि सौभाग्य और सुखकी देवी धीरे धीरे मुगलोंको छोड़ रही थीं। वास्तव में यही बात थी। भारतवर्षकी उस समयकी राजनीतिक अवस्था पर ध्यान दीजिये तो हमारी बातकी सचाई मालूम हो जा-

---

सेवा करते हैं उनकी एक सूची मुझे दीजियेगा; क्योंकि जो आपका कहा नहीं मानते उनको मैं दण्ड दूंगा। पर पायमालीके (ख) लिये मैं जिम्मेदार नहीं।

"पञ्चहजारीके—फूलिया, मण्डलगढ़, बेदनोर, पुर, बसार, गयासपुर, पुरधर, बांसवाड़ा और डूंगरपुर—ये स्थान ले लिये गये हैं सो पुनः दिये जायँ। तख़्त पर बैठनेके समय आपने पुराने पांच हज़ारके अतिरिक्त और एक हजार और सिम्भिनीकी लड़ाईमें जीत होने पर २ तथा ३ (ग) घोड़ोंके और एक हजार बढ़ाये थे।

"पुरस्कारके तीन करोड़ दामों (घ) मेंसे—अर्थात् फर्मान (प्रमाणपत्र) के अनुसार दो करोड़, और दक्षिणमें गई हुई सेनाके वेतनके एक करोड़मेंसे—दो करोड़के बदलेमें आपने सिरोहीका जिला दिया।

"अब जो जिले चाहियें उनके नाम ये हैं,—ईडर, किकरी, मण्डल, जिहाजपुर, मालपुर और (अन्तिमका नाम टाड साहब मालूम नहीं कर सके)।"

(ख) एक स्थानसे दूसरे स्थानमें जानेके समय सैनिक खेती आदि जो चीज बर्बाद करते थे उसीके लिये "पायमाली" शब्द व्यवहृत हुआ है।

(ग) कृपा दिखानेके समय बादशाह अपने प्रिय सैनिकोंमेंसे हरएकको दो और तीन घोड़े देता था।

(घ) चालीस दामका एक रुपया हुआ।

लेगी। दक्षिणमें वीर मरहठे राजा साहूकी सरदारीमें लूटपाट मचाकर अपना पराक्रम प्रकट कर रहे थे; पर जीते हुए राज्योंमें राज्य करना आरम्भ न कर वे "चौथ" और "दशमुखी" अर्थात् राज्यकी आमदनीका चौथा तथा दसवां हिस्सा लेते थे।

मुगल-साम्राज्यके इस अधःपतनके समय देहलीके पास एक और वीरजाति स्वाधीन हो गई; अर्थात् जाट। आगे कहा जा चुका है कि जाट प्राचीन जितोंकी एक शाखा हैं। ये चम्बल नदीके पश्चिम ओर थे। मुगलोंके कठोर अत्याचार सह-कर भी ये धीरे धीरे आवश्यक सहायता जमा करते जाते थे; इस समय मुगल-साम्राज्यकी क्षीण अवस्था देखकर इन्होंने सिर उठाया और अपनेको स्वाधीन जाति प्रकट किया; यहांतक कि उनकी स्वाधीनताकी ध्वजा देहलीके बाहरतक उड़ी। सिन्धियाके घेरेसे लेकर बहुत दिनोंतक वे स्वाधीन रहे। बाद जिस दिन अपनी चतुराईसे अंगरेजोंने भरतपुरका किला जीता उस दिन उनकी स्वाधीनता नष्ट हो गई और उनको अंगरेजोंके अधीन होना पड़ा।

राणा अमरसिंह (द्वितीय) का अन्तिम कार्य यही सन्धिबन्धन था। इसके थोड़े ही दिन बाद सन् १७१६ ई० में उनका देहान्त हो गया। वे ऊँचे ख्यालके और दक्ष राजा थे। भारतके उस विप्लव और मुगलसाम्राज्यकी अराजकताके समय भी वे अपने राज्यको अच्छी अवस्थामें रख सके थे। कृषि और शिल्पके सम्बन्धमें वे बड़े उत्साही और सहायक थे। मेवाड़के कीर्त्तिस्तम्भ उनके गुणोंको प्रकट कर रहे हैं और मेवाड़वासी उनकी कीर्त्ति स्मरण कर रहे हैं। पर उनकी मृत्युके बाद ही उनके बाद मेवाड़की गद्दी पर बैठनेवालेके समयमें मेवाड़का अधःपतन हुआ। फिर मेवाड़ न उठा।

राजस्थानका इतिहास ।

(पांचवां भाग)

अर्थात् कर्नल जेम्स् टाड-प्रणीत "अनल्स् एण्ड एण्टीक्विटीज़ आफ राजस्थान एण्ड वेस्टर्न राजपूत स्टेट्स्" नामक अंग्रेजी ग्रन्थ ।

हिन्दीसाहित्य-सम्पादक

बाबू गङ्गाप्रसाद गुप्त द्वारा अनुवादित ।

जिसमें

अनुवादकने अंगरेजी, फ़ारसी, संस्कृत, हिन्दी, उर्दू, बङ्गला, मरहठी और गुजरातीकी पुस्तकों तथा "एशियाटिक रिसर्चेज़की" सहायतासे स्थान स्थान पर टिप्पणियां लगाई हैं ।

काशी ।

भारतजीवन प्रेसमें बाबू श्रीकृष्ण वर्म्मा द्वारा मुद्रित ।

अप्रेल. सन् १९११ ई० ।

चौदहवां अध्याय।

राणा संग्रामसिंह;—मोगलसाम्राज्यका अधःपतन;—निजामुलमुल्कका हैदराबाद राज्य स्थापित करना;—शाहंशाह फर्रुखशेरका मारा जाना;—'जिजिया' कर रहित होना;—देहलीके तख़्तपर मोहम्मदशाहका बैठना;—सआदतखांका अवध पर अधिकार करना;—मेवाड़की शासननीति;—राणा संग्रामसिंहका परलोकवास;—उनके विषयकी कुछ कहानियां;—राणा जगत्सिंह (द्वितीय) का सिंहासनारोहण;—मारवाड़ और अम्बर राज्योंसे उनकी सन्धि;—मरहठोंका मालवा और गुजरातपर चढ़ाइयां करके इन जगहोंपर अधिकार प्राप्त करना;—भारतपर नादिरशाहकी चढ़ाई;—देहलीमें लूटपाट मारकाट;—राजपूतानेकी तत्कालीन अवस्था;—मेवाड़की सीमा नियत होना;—राजपूतोंकी एकताका वृत्तान्त;—बाजीरावका मेवाड़पर आक्रमण करना और राणाजीके ऊपर वार्षिक कर लगाना;—अम्बरकी गद्दीपर मधुसिंहको बैठानेमें झगड़े;—राजमहलकी लड़ाई;—राणाजीकी हार;—मल्हारराव होल्करके साथ सन्धि;—अम्बरके ईश्वरीसिंहका जहर खाकर मरना;—राणाजीकी मृत्यु;—उनका चरित्रवर्णन।

राणा अमरसिंह (द्वितीय) की मृत्युके बाद राणा संग्रामसिंह (द्वितीय) मेवाड़की गद्दीपर बैठे। यह पवित्र नाम सुनतेही बाबर-बैरी प्रबल वीर महाराणा प्रथम संग्रामसिंह याद आ जाते हैं और साथही मेवाड़की पिछली और वर्त्तमान अवस्थाका चित्र हृदयपट पर खिंच जाता है जिससे आनन्द और दुःख दोनोंका अनुभव होता है। मनमें यह प्रश्न उठता है "ये कौन संग्रामसिंह हैं? क्या जिन्होंने तैमूरके वीर वंशधर वीर बाबरका मुकाबला किया था ये वेही संग्रामसिंह हैं? सन्ध्याके समय दीप हाथमें लेकर रात्रिकी अगवानी करती बार राजपूत रमणियां जिनको स्मरण किया करती हैं, आटा पीसनेके समय कुमारियां जिनकी वीरत्वके गीत गाया करती हैं, सबेरे सोतेसे उठकर राजपूत वीर जिनका पवित्र नाम याद करते हैं, चित्तौड़के विजयस्तम्भोंमें—अरावलीकी पथरीली चट्टानों आदिमें—जिनका नाम जगह जगह खुदा हुआ देख पड़ता है, क्या ये वेही संग्रामसिंह हैं?—इसके उत्तरमें मानों किसी देवताका यह गम्भीर वाक्य सुनाई

देता है—"मनुष्यका तेज, वीर्य, गौरव, मान, कुछ भी स्थायी नहीं है;—सब अनित्य हैं। यह अनित्यता संसार पर प्रकट करनेके लिये आज राणा द्वितीय संग्रामसिंह प्रथम संग्रामसिंहकी गद्दीपर बैठे।"

जिस समय तैमूरके वंशका 'बादशाह' नामसे पुकारे जानेके योग्य अन्तिम अधिकारी मोहम्मदशाह देहलीके तख्त पर बैठा उसी समयके लगभग राणा द्वितीय संग्रामसिंह मेवाड़की गद्दी पर अभिषिक्त हुए। इन्हींके राजत्वसमयमें—सन्. १७१६ से १७३४ ई०के बीचमें—मोगलसाम्राज्यका अधःपतन आरम्भ हुआ;—बाबरका जमाया हुआ विराट् सिंहासन धीरे धीरे भग्न और विभक्त होने लगा। उन विभक्त अंशोंमें असंख्य छोटे छोटे स्वतन्त्र राज्य प्रतिष्ठित होने लगे। मोगल या पठान, शीया या सुन्नी, मरहठे या राजपूत, सभीने कुछ दिनोंतक राज्यका सुख भोगा और स्वाधीनताका झण्डा उड़ाया। अन्तमें जब भवितव्यताके पूरे होनेका समय आया—जब हिमालयसे सिंहल तक जल स्थल बन पर्वत भारतके सब स्थानोंमें अशान्ति और गड़बड़ फैली— तब कुछ अंगरेज भारतमें आये। उन्होंने मुसलमानों, मरहठों, राजपूतों, सबको दबाकर एक नया विराट् साम्राज्य स्थापित किया। आज उसी विशाल साम्राज्यमें मुसलमान, महाराष्ट्र, सिख, राजपूत आदि सिर झुकाये हुए बसते हैं!

विश्वास करके अभागे मोगल बादशाहने जिस किसीको सेनापति या अपना प्रतिनिधि बनाकर किसी प्रदेशका शासनकार्य सौंपा वही सेनापति या प्रतिनिधि कृतघ्नता भूलकर विद्रोही हो गया और जहांके शासनका कार्य उसे सौंपा गया उस प्रदेश पर उसने स्वयं अधिकार कर लिया। इस अनुचित उपायसे राज्याधिकार करके भी यदि वे सब सेनापति प्रतिनिधि आदि कर्मचारी अच्छे ढङ्गसे अपने अपने प्रान्तका शासन कर सकते, यदि वे प्रजाओंके साथ जो कि राज्यका स्तम्भ होती हैं उत्तम बर्ताव रखते—उनका रक्षण और पालन करते, तो उनके अधर्मसे प्राप्त किये हुए हैदराबाद अवध बंगाल आदि राज्य कदाचित् अबतक उन्हींके वंशधरोंके अधिकारमें होते। पर इस विषयमें मरहठोंकी नीति सबसे अलग दिखाई देती है। उनके यकायक उन्नत हो जानेके विषयपर विचार करनेसे बड़ा आश्चर्य होता है। यह पता लगाना कठिन है कि किस दैवी शक्तिके प्रभावसे महाराष्ट्रकेसरी

शिवाजीने शान्तिके साथ जीवन व्यतीत करनेवाले धर्म्मयाजकों और किसानोंको सुयोग्य राजकर्मचारी और युद्धविशारद सैनिक बना डाला था। अवश्यही हिन्दू-विद्वेषी मोगल बादशाहके अत्यन्त कठोर अत्याचारोंसे कष्टित होनेपर वीरवर शिवाजीने अपने देशके लोगोंको वीरताकी बातें बतलाई थीं और युद्धके विषयमें उत्साहित किया था, पर जितने थोड़े समयमें उन्होंने ऐसा बड़ा काम किया उस पर विचार करनेसे किस हिन्दूका हृदय उत्साहसे न भर जायगा ? कौन नहीं भारतका उद्धार करनेवाला मानकर महात्मा शिवाजीका पूजन करनेकी इच्छा करेगा ? पर भारतका दुर्भाग्य कहना चाहिये कि शिवाजीके वंशधरोंने उनकी नीतिका अनुकरण नहीं किया। यदि उनके वंशधर उन्हींकी नीतिपर चलते, तो औरंगजेबके अधीनके जिन राज्योंको उन्होंने छीना था उनपर आजतक उन्हींके वंशजोंका अधिकार रहता। पर जो होनी थी उसे कौन टाल सकता था ?—नहीं तो जीत होनेपर भी वे दूसरी नीति पर क्यों चलते ? जिन राज्यों पर वे विजय प्राप्त करते वहां मराठी प्रभुता न स्थापित करते, किन्तु केवल लूटपाट मचाकर अपने देशको लौट जाते। साहस, उत्साह, धीरता, शान्तिप्रियता आदि जिन अच्छे गुणोंका परिचय उन्होंने इससे पहले दिया था, उनके बदले वे अब चतुरता, लोभ, लूटपाट आदिमें पड़ गये। जिस दक्षिण देशमें उनका पूरा पूरा अधिकार हो गया था, जहांके निवासियोंकी भाषा और रीतिनीति उनकी भाषा और नीतिसे बिलकुल मिलती थी, राजनीतिके उत्तम नियमोंपर चलते हुए यदि वे उसी दक्षिण देशके अधिकारसे सन्तुष्ट रहते तो उस विशाल प्रदेशसे वीरवर शिवाजीका बोया हुआ वंशवृक्ष इतनी जल्दी न उखड़ जाता। पर उनकी बुरी लालसाने उनकी हानि की। बुरी लालसामें पड़कर वे ज्यों ज्यों उत्तरप्रदेशोंमें उपद्रव आरम्भ करते गये त्यों त्यों उन्हींकी जाति और देशके लोग उनसे नाराज होते गये। राजपूत और मरहठे दोनों हिन्दू हैं; धर्म्म और जातिके सम्बन्धमें भी दोनोंमें बहुत अन्तर नहीं है; पर दोनों जातियोंकी प्रकृति और रुचिमें इतना भेद है जितना राजपूतों और मुसलमानोंकी प्रकृति और रुचिमें न होगा। निस्सन्देह मुसलमानोंका समय अत्याचारोंका था; पर मरहठोंकी तरह अपकारक नहीं। यही कारण है कि मुसलमानोंके बहुत दिनोंके राजत्वसे भी राजस्थानकी उतनी